फरवरी 2021

# डाउन टू अर्थ

पर्यावरण और विकास की राजनीति... हर महीने

₹ 50

**कृषि विशेषांक**

# चूक गए तो चुक गए

क्या भारत अब कृषि प्रधान देश नहीं रहा?

दुनियाभर में कृषि को कितना सहयोग मिलता है और भारत कहां खड़ा है?

सरकारी उपेक्षा और जलवायु परिवर्तन की क्या कीमत चुकाएंगे किसान?

\+

कृषि की दशा-दिशा पर
चौधरी चरण सिंह, महेंद्र सिंह टिकैत और शरद जोशी के विचार

# Advance Training Programme on Continuous Emission and Effluent Monitoring System

**Course Venue** Anil Agarwal Environment Training Institute (AAETI), Tijara (Rajasthan)

**Dates** 4 to 6 March, 2021

**Last Date to Apply** 25th February 2021

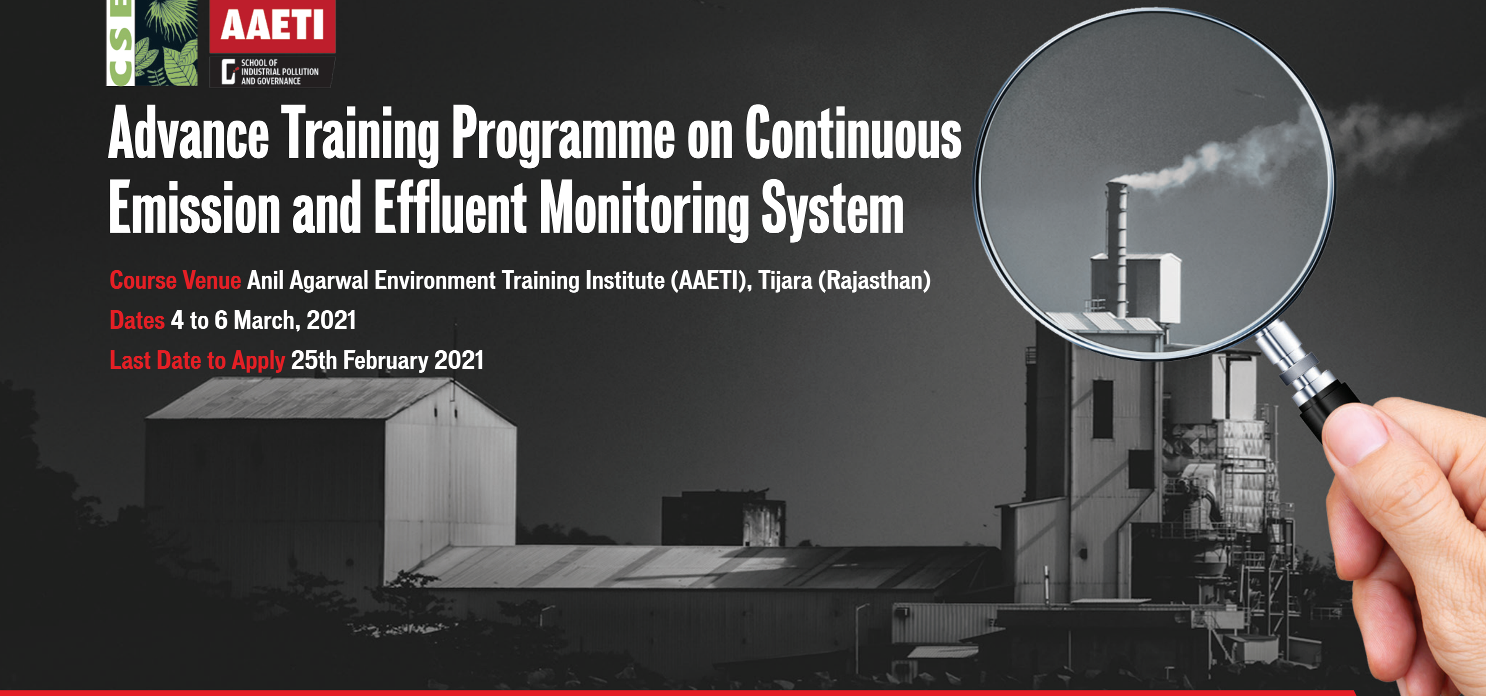

**FOR MORE INFORMATION, VISIT**
https://www.cseindia.org/advance-training-programme-on-continuous-emission-and-effluent-monitoring-system-10594

Centre for Science and Environment is organising a 3-days certificate course on “Advance Training Programme on Continuous Emission and Effluent Monitoring System”. Continuous Emission Monitoring System (CEMS) and Continuous Effluent Quality Monitoring System (CEQMS) are mandatory for plants in 17 industrial sectors (classified under highly polluting industries) and for common pollution treatment facilities. In addition, grossly polluting industries (GPIs) need to install CEQMS.

The real time data will become the basis for regulators to check compliance, in near future. It can also help industrial sectors/ regulators in process optimization and taking timely corrective measures. Since CEMS and CEQMS are complex and expensive technologies, there are significant challenges and risks associated with its implementation. The major challenges include correct technology selection, installation, operation & maintenance and data handling. Data interpretation plays an important role in identifying issues related to data integrity. Therefore, thorough knowledge and skills relevant to CEMS regime, becomes most crucial factor for industries, regulators and other stakeholders. This programme will also lay focus on audit methodology, which ensures correct implementation of CEMS, certification, verification, accreditation of the system, technical acceptance through calibration, quality assurance, generating accurate, reliable and traceable data.

## COURSE HIGHLIGHTS-

- Pollution monitoring regulations in India and developed countries like US and Europe.
- PM, Gaseous CEMS and CEQMS Technology selection and correct installation.
- Operation and Maintenance of PM, Gaseous CEMS and CEQMS.
- Requirement and procedures of calibration for PM, Gaseous CEMS and CEQMS.
- Data acquisition, handling and reporting.
- Data interpretation, compliance check and improvement.
- How to conduct CEMS and CEQMS Audit.
- Audit Methodology and development of audit questionnaire.

## WHO SHOULD ATTEND?

Environment professionals from industries, consultants, environmental laboratories, regulators, academia and others interested participants. 50% seats are booked for participants from Rajasthan and Maharashtra.

## COURSE FEE

The course is not chargeable. CSE will bear the following expenses of shortlisted candidates: transportation of the participants (from CSE, New Delhi to Neemli and back), boarding and lodging (for 4 nights, from 3rd March to 6 March, 2021), training cost and use of recreational facilities at AAETI. Considering the current COVID situation, every participant will get one well sanitized room with trained staff who follow safe practices. The AAETI campus have a safe and Hygienic environment with proper social distancing, guest and staff temperature check.

**PARTICIPANTS WILL BE AWARDED WITH A “CERTIFICATE OF COMPLETION” ON SUCCESSFUL COMPLETION OF THE PROGRAMME**

**Training Coordinator**

Shreya Verma
Industrial Pollution Team
Email: Shreya@cseindia.org
Contact: 8882084294

# डाउन टू अर्थ

**संस्थापक संपादक** अनिल अग्रवाल

**संपादक** सुनीता नारायण

**प्रबंध संपादक** रिचर्ड महापात्रा

**वरिष्ठ सहायक संपादक** अनिल अश्विनी शर्मा

**वरिष्ठ उपसंपादक** भागीरथ

**वरिष्ठ संवाददाता** राजू सजवान

**संवाददाता** विवेक मिश्रा

**क्रिएटिव डायरेक्टर** अजीत बजाज

**ग्राफिक संपादक** सोरित गुप्तो

**रिपोर्टिंग टीम**
ईशान कुकरेती, अक्षित संगोमला, बनजोत कौर, शगुन कपिल

**सूचना एवं शोध सहयोग** किरण पांडे
www.indiaenvironmentportal.org.in टीम

**सहायक कला संपादक** चैतन्य चंदन, संजीत कुमार

**डिजाइन टीम**
श्रीकृष्ण, विजयेंद्र प्रताप सिंह, रितिका बोहरा

**फोटो पत्रकार** विकास चौधरी

**फोटो लाइब्रेरी** अनिल कुमार

**हिंदी सहयोग**
सुरेंद्र सिंह, जयदेव शर्मा, ललित मौर्य, दयानिधि मिश्रा

**प्रोडक्शन** राकेश श्रीवास्तव, गुंधर दास

**संपादन परामर्श**
अनुमिता रायचौधरी, विभा वार्ष्णेय

**विज्ञापन संपर्क** ज्योति घोष
jghosh@cseindia.org

**सब्सक्रिप्शन संपर्क** केसीआर राजा
raja@cseindia.org

**वर्ष 3, अंक 4, कुल पृष्ठ 60**
सम्पादकीय, सब्सक्रिप्शन और विज्ञापन: सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्यूनिकेशंस, 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062
फ़ोन: +91-11-29955124, 29956110, 29956394, 29956399
फ़ैक्स: +91-11-29955879
ई मेल: editor@downtoearth.org.in
© 2021 सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस सर्वाधिकार सुरक्षित (पूरे विश्व के लिए)। किसी भी प्रकार से पुन: उत्पादन प्रतिबंधित।
सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस के लिए रिचर्ड महापात्रा द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। तारा आर्ट प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ए-46-47, सेक्टर-5, नोएडा-201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित और 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062 से प्रकाशित।

सब्सक्राइब करने के लिए फोन करें
011-4061 6000 पर
या लॉग इन करें **www.downtoearth.org.in/subscribe**

**आवरण डिजाइन** अजीत बजाज
**आवरण फोटो** विकास चौधरी

## कृषि विशेषांक

4 **सुनीता नारायण: किसानों को हमारा समर्थन चाहिए**
भोजन की वास्तविक कीमत पर बात करने का समय

8 **किसान होने का मतलब**
क्यों निराश, परेशान और हताश हैं भारत के अन्नदाता

14 **खेती से मोहभंग**
तेजी से छूट रहा है पारंपरिक पेशा

17 **प्रतिकूल मौसम**
जलवायु परिवर्तन की मार किसानों पर सबसे अधिक पड़ने वाली है

25 **सरकार का सहयोग**
भारत सहित दुनियाभर के देशों में बिना सरकारी सहयोग खेती असंभव

41 **दोगुनी आय का लक्ष्य**
पायलट प्रोजेक्ट वाले गांवों में भी दोगुनी आय के आसार नहीं

51 **कारपोरेट की नजर**
भारत में किराना बाजार पर नियंत्रण के लिए पूरी तैयारी के साथ आया है कारपोरेट

56 **घटती उर्वरता**
मिट्टी की घटती उर्वराशक्ति भविष्य में गंभीर संकट का इशारा

### कॉलम

32 **शरद जोशी**
किसानों को वाजिब हक देने का समय

46 **चौधरी चरण सिंह**
संगठन के आगे ही झुकती है सरकार

54 **महेंद्र सिंह टिकैत**
सब्सिडी नहीं, फसल के सही मूल्य की जरूरत

24 **सोमपाल शास्त्री**
भारत कृषि में विश्व की अग्रणी आर्थिक शक्ति

38 **कपिल शाह**
आत्मनिर्भर किसान में निहित है कृषि का भविष्य

*डाउन टू अर्थ* संपादकीय पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की किसी भी विषयवस्तु का समर्थन नहीं करता है। सभी विवाद सिर्फ दिल्ली/नई दिल्ली के प्रतिस्पर्धी न्यायालय और फोरमों के विशिष्ट न्यायाधिकार का विषय है

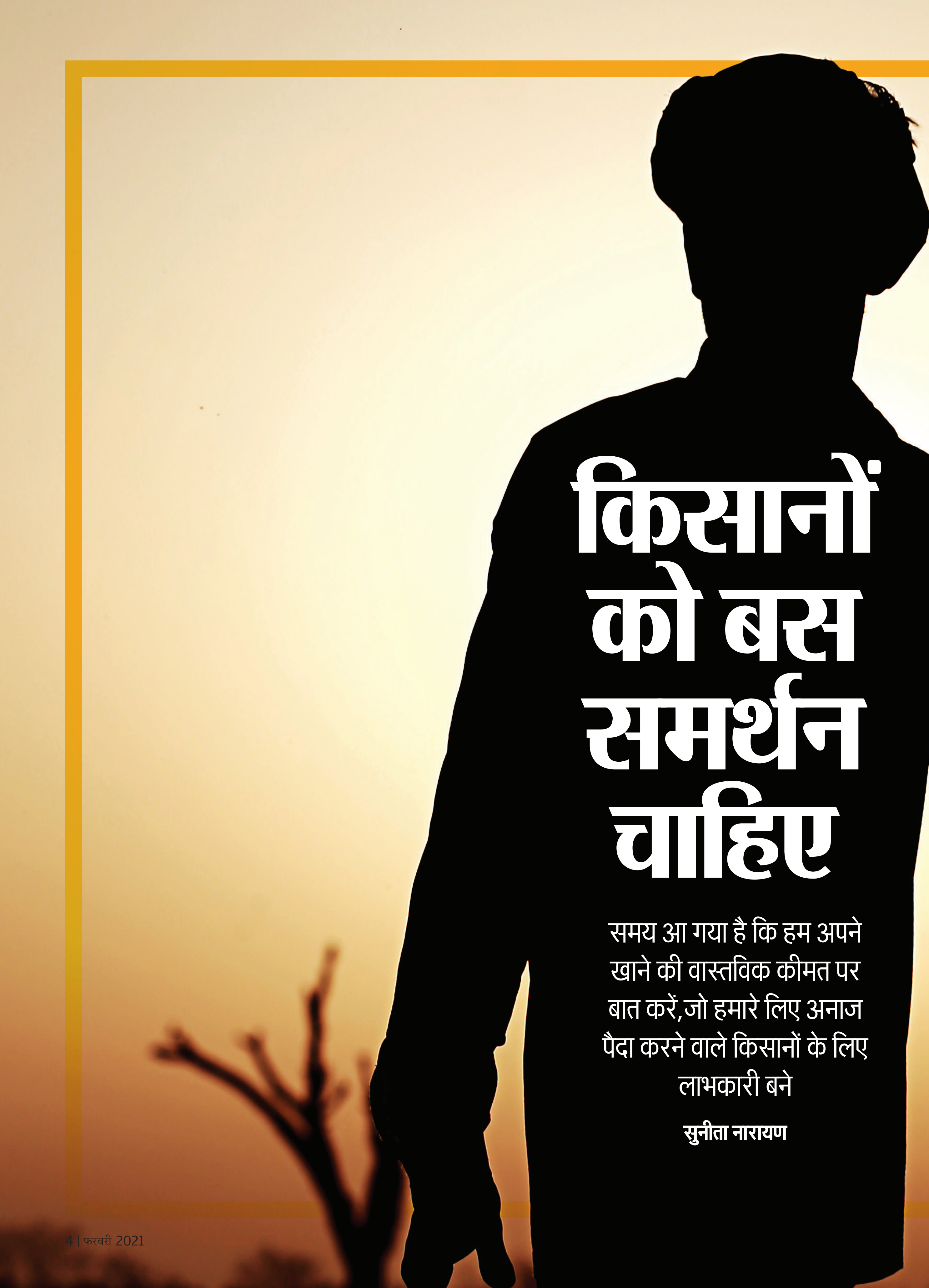

# किसानों को बस समर्थन चाहिए

समय आ गया है कि हम अपने खाने की वास्तविक कीमत पर बात करें,जो हमारे लिए अनाज पैदा करने वाले किसानों के लिए लाभकारी बने

**सुनीता नारायण**

**नए साल** 2021 की शुरुआत हमने इस उम्मीद के साथ की थी कि यह हमें 2020 की विध्वंसकारी महामारी से राहत देगा। लेकिन इसके विपरीत हमारे किसान हजारों की संख्या में दिल्ली की सीमा पर धरने पर बैठे हैं। उनके इस शांतिपूर्ण आंदोलन की एक ही मांग है, सरकार हाल में पास किए गए कृषि बिलों को निरस्त कर दे। कौन सही है और कौन गलत, इस बारे में काफी बहस हो चुकी है। इससे जो एक बात सामने निकलकर आई है, वह यह है कि अब हमें किसानों द्वारा उगाए गए भोजन को उपभोक्ता के रूप में सोचने की जरूरत है, न कि किसी शोधकर्ता, शिक्षाविद या नीतिनिर्माता के तौर पर।

हमें यह सवाल पूछना चाहिए कि हम जिस भोजन का उपभोग करते हैं, उसे सब्सिडी देने की आवश्यकता आखिर क्यों है। आखिर किसान समर्थन मूल्य की मांग क्यों कर रहे हैं? यह मांग केवल उन किसानों की नहीं है जो इस भीषण सर्दी में राजधानी दिल्ली की सीमाओं पर बैठे हैं, उन्हें भारत की एक बड़ी अबादी का समर्थन भी प्राप्त है। तो क्या ये सारे लोग अनुत्पादक और आलसी हैं? यह एक तथ्य है कि दुनियाभर में (खासकर समृद्ध देशों में) कृषि क्षेत्र को सरकारों से भारी मदद मिलती है। पेरिस स्थित अंतरसरकारी थिंक-टैंक ओईसीडी इस क्षेत्र को सकल कृषि प्राप्तियों के प्रतिशत के रूप में प्रोड्यूसर सपोर्ट के जरिए समर्थन का अनुमान लगाता है। इसके आंकड़ों के अनुसार जापान, दक्षिण कोरिया, नॉर्वे और आइसलैंड जैसे अमीर देशों में, उत्पादक समर्थन 2019 में सकल कृषि प्राप्तियों के प्रतिशत के रूप में 40 से 60 प्रतिशत के बीच था। अमेरिका में यह लगभग 12 प्रतिशत है और यूरोपीय संघ में 20 प्रतिशत। लेकिन भारत में उत्पादक समर्थन (वह भुगतान जो उत्पादन के प्रतिशत के रूप में सरकार द्वारा किया जाता है) वास्तव में नकारात्मक (-5 प्रतिशत) है। दूसरे शब्दों में, दुनिया के कुछ सबसे गरीब लोगों के स्वामित्व एवं प्रबंधन में चल रहा यह कृषि क्षेत्र हमारे भोजन को सब्सिडाइज कर रहा है।

लेकिन पूरी कहानी कुछ और है। जलवायु परिवर्तन के बढ़ते जोखिम के समय में समृद्ध राष्ट्र अपने कृषि क्षेत्र का समर्थन करने के लिए तेजी से नए तरीके विकसित कर रहे हैं। उत्पादन के लिए भुगतान सीधे नहीं किया जाता है। यह भुगतान इसी शर्त पर होता है कि किसान नई, सस्टेनेबल तकनीकों को अपनाएंगे। यूरोपीय संघ की आम कृषि नीति अब किसानों को पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के भुगतान के लिए निर्देशित की जाएगी। इसका मतलब हुआ और ज्यादा सब्सिडी लेकिन नए नाम से। इस तरह, लगभग सभी बड़े खाद्य उत्पादक देशों में सब्सिडी उनके सामाजिक और पर्यावरण कल्याण उपायों के हिस्से के रूप में शामिल है। सब्सिडी किसानों को सीधे भुगतान के माध्यम से या कुछ फसलों के समर्थन मूल्य के माध्यम से या पानी, उर्वरक और बीज जैसे प्रमुख कृषि इनपुट में निवेश के माध्यम से दी जा सकती है।

**दुनिया के कुछ सबसे गरीब लोगों के स्वामित्व एवं प्रबंधन में चल रहा यह कृषि क्षेत्र हमारे भोजन को सब्सिडाइज कर रहा है**

दुनिया के कम समृद्ध देशों के किसान, जिनमें भारत के अमीर राज्य पंजाब और हरियाणा के लोग भी शामिल हैं, को इस वैश्विक पटल पर प्रतिस्पर्धा करनी होती है। सबसे पहले वे वंचित हैं क्योंकि उन्हें खेती को आकर्षक बनाने के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता नहीं मिलती है। दूसरी बात, जब खराब मौसम या अन्य कारणों से उनकी फसलें महंगी हो जाती हैं, तो सरकार सस्ता भोजन आयात कर लेती है। इस तरह हमारे किसान कहीं के नहीं रह जाते। यही कारण है कि किसान मूल्यों में उतार-चढ़ाव से स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की मांग कर रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान समय में यह प्रणाली पूरी तरह से कमजोर हो चुकी है। हालांकि एमएसपी 23 फसलों के लिए तय की गई है लेकिन वास्तव में, यह केवल गेहूं एवं धान जैसी कुछ फसलों के लिए उपयोग में लाई जाती है, जिनकी सरकारी खरीद की व्यवस्था है। यही कारण है कि पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के किसानों को डर है कि यह व्यवस्था खत्म कर दी जाएगी। वे मुख्यतः गेहूं और चावल उगाते हैं जो ज्यादातर सरकार द्वारा खरीदा जाता है।

लेकिन बाकी फसलों का एमएसपी एक खोखला वादा मात्र है। जैसा कि मेरे सहयोगी ने कृषि समर्थन पर अपने हालिया लेख में विश्लेषण किया है, बाजार किसानों को आवश्यक कीमत का भुगतान नहीं करता। सरकार के स्वयं के आंकड़ों के अनुसार, 600 थोक बाजारों में 10 चुनिंदा फसलों के लिए लगभग 70 प्रतिशत लेनदेन एमएसपी से कम कीमत पर हुआ था।

प्रमुख मुद्दा यह है कि भोजन की कीमत क्या होनी चाहिए? यह तथ्य है कि कृषि क्षेत्र में लागत बढ़ रही है, बीज और पानी से श्रम तक। फिर यह भी सच है कि जलवायु परिवर्तन के कारण खराब मौसम से होने वाले नुकसान का खतरा बढ़ रहा है। इस तरह, किसानों को उत्पादन की बढ़ती लागत और फसलों के नुकसान के बढ़ते जोखिम, दोनों के एवज में भुगतान किया जाना चाहिए।

भारतीय किसान किसी भी निजी कंपनी या उद्योग के विपरीत, अपने परिचालन के लिए बुनियादी ढांचे के निर्माण में भारी मात्रा में निजी पूंजी का निवेश करते हैं। वे अपने खेतों की सिंचाई के लिए भी पैसे खर्च करते हैं। कुल सिंचित भूमि का आधे से अधिक हिस्सा भूजल पर निर्भर है। हमारे देश में कुछ 1.9 लाख कुओं और नलकूपों का निर्माण निजी पूंजी से किया गया है। सरकार इस मामले में कोई मदद नहीं करती। वास्तव में एमएसपी की गणना में किसान के साथ धांधली होती है क्योंकि सरकार को यह सुनिश्चित करना होता है कि खाद्यान्नों की कीमत कम रहे ताकि सरकारी खरीद का बोझ भी कम रहे। किसी भी सरकार को सबसे अधिक डर खाद्य मुद्रास्फीति से लगता है, क्योंकि उपभोक्ता तब सही मायनों में अपना आपा खो बैठते हैं। यह तब है जब सरकार कीमतों को कम करने के लिए खाद्यान्नों का आयात अमीर देशों से करती है, जहां उन्हें उगाने पर सब्सिडी दी जाती है और जिसके खिलाफ हमारे किसान प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते। समय आ गया है कि हम अपने खाने की वास्तविक कीमत के बारे में बात करें, जो हमारे लिए अनाज पैदा करने वाले किसानें के लिए लाभकारी बने, इस विषय पर मंथन करें। यह एक ऐसा व्यवसाय नहीं है जिसे हम बंद कर सकते हैं। हमारे दरवाजे पर बैठे किसान इसी मुद्दे पर बात करना चाहते हैं। हम उन्हें निराश नहीं कर सकते।

# वक्तव्यों से परे...

पर्यावरण और विकास पर भारत की बहुप्रतीक्षित पत्रिका **अब हिंदी में भी**

पर्यावरण और विकास से जुड़े मुद्दों को समर्पित पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' के 25 साल पूरे होने पर हमें इसके हिंदी संस्करण की शुरुआत करते हुए बेहद खुशी है। यह नई पत्रिका विकास, पर्यावरण और स्वास्थ्य की राजनीति से संबंधित ऐसी जमीनी रिपोर्ट, खबरें और तथ्यपूर्ण लेख आप तक पहुंचाएगी जो आपके लिए सबसे ज्यादा मायने रखते हों। हम आशा करते हैं कि 'डाउन टू अर्थ' के अंग्रेजी संस्करण की तरह ही हिंदी पत्रिका भी केंद्र और राज्य सरकारों के नीति निर्धारकों को व्यापक जन हित में फैसले लेने के लिए बाध्य करेगी। पत्रिका में मौलिक रिपोर्टों के अलावा पर्यावरण से जुड़े साहित्य, लोक संस्कृति और इतिहास से संबंधित सामग्री को भी जगह दी गई है।

'डाउन टू अर्थ' हमारे सरोकारों और जुनून का नतीजा है। हमारा लक्ष्य आप तक उन मुद्दों को पूरे तथ्यों के साथ पहुंचाना है, जो हमारे वर्तमान और भविष्य पर असर डालते हैं। इस मुहिम में हमें आपके सहयोग की जरूरत है। आपसे अनुरोध है कि आप 'डाउन टू अर्थ' के हिंदी संस्करण को हर महीने खरीदकर हिंदी में पर्यावरण और विकास को समर्पित स्वतंत्र पत्रकारिता को अपना सहयोग प्रदान करें।

## डाउन टू अर्थ

### सब्सक्रिप्शन फार्म

सब्सक्राइबर का नाम: श्री/श्रीमती/सुश्री________________ संस्थान: ________________

पता: कार्यालय ☐ निवास ☐ ________________ राज्य: ________ पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

फोन/मोबाइल: ☐ कार्यालय ☐ निवास ________ फ़ैक्स: ________ ईमेल: ________________

मैं इस आवेदन के साथ रुपये________________ ☐ नक़द / ☐ मनी ऑर्डर/चेक/डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से भुगतान कर रहा हूं। कृपया मुझे डाउन टू अर्थ के लिए सब्सक्रिप्शन प्रदान करें।

चेक/डिमांड ड्राफ़्ट संख्या ☐☐☐☐☐☐☐ तिथि________ (चेक/डिमांड ड्राफ़्ट **Society for Environmental Communications** के नाम नई दिल्ली में भुगतेय होगा)

**पत्रिका मंगाने के लिए कॉल करें 011-40616000 (एक्सटेंशन-234) या ईमेल करें dte@cseindia.org**

**डाउन टू अर्थ सब्क्रिप्शन दर (1 अक्टूबर 2016 से लागू)**

| | मूल्य (@ ₹50) | आपकी बचत | भुगतान करें सिर्फ |
|---|---|---|---|
| 3 साल (36 अंक) | ₹1,800 | 50% | ₹900 |
| 2 साल (24 अंक) | ₹1,200 | 45% | ₹660 |
| 1 साल (12 अंक) | ₹600 | 40% | ₹360 |

**पूरी तरह से भरे हुए सब्सक्रिप्शन फार्म यहां भेजें:**

सोसायटी फ़ॉर एन्वायरॅन्मेंटल कम्यूनिकेशंस
41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062
**dte@cseindia.org**

# भारतीय किसान होने का मतलब

मैं दुनिया के सबसे छोटे किसानों में एक हूं। भारत में एक किसान के पास 1.08 हेक्टेयर औसत भूमि है जिससे आठ लोगों का गुजर-बसर होता है। छोटी जोत वाले 42 प्रतिशत भूमि पर खेती करते हैं और कुल भूस्वामियों में इनकी हिस्सेदारी 83 प्रतिशत है। मेरे कंधों पर दो बड़ी और अहम जिम्मेदारियां हैं, जो शायद आपके पास नहीं हैं। मुझे खुद को भी पालना है और देश का पेट भी भरना है। मेरा देश दुनिया में अनाज का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। भारत की खाद्य आत्मनिर्भरता मेरे दम पर ही आई है। पिछले पांच साल से मैं लगातार बंपर उत्पादन दे रहा हूं। उद्योगों के आठ प्रकारों में केवल कृषि ही वह सेक्टर है जिसने 2020-21 में महामारी के बावजूद विकास दर्ज की है। मेरे जैसे असंख्य किसानों ने 20.13 लाख करोड़ रुपए की अर्थव्यवस्था खड़ी की है। आधे से अधिक भारतीय अब भी खेती करते हैं और हर चौथा मतदाता किसान है। यही वजह है कि आप सभी गर्व के साथ "जय जवान, जय किसान" का नारा लगाते हैं। इस सबके बावजूद आप लोगों ने हमें सड़कों पर देखा होगा। हम या तो प्रदर्शन कर रहे हैं या अपनी उपज का उचित मूल्य न मिलने पर उसे फेंक रहे हैं। 2020 में 22 राज्यों के किसानों ने 71 बार प्रदर्शन किए। क्या आपके मन में कभी सवाल उठा है कि आखिर हम क्यों प्रदर्शन कर रहे हैं?

# अर्थव्यवस्था में घटता योगदान

"भारत के सकल घरेलू उत्पाद में मेरा योगदान लगातार कम हो रहा है। इसी कारण अर्थशास्त्री कह रहे हैं कि अर्थव्यवस्था में मेरा महत्व कम हो रहा है। नेताओं का भी ऐसा ही मानना है। इसके बावजूद ज्यादा से ज्यादा परिवार अपने जीवनयापन के लिए खेती पर निर्भर हो रहे हैं। 1952 के दशक में जीडीपी में मेरा योगदान 51 प्रतिशत था जो वर्तमान में कम होकर करीब 16 प्रतिशत ही रह गया है। 1951 में कुल 7 करोड़ परिवार खेती पर निर्भर थे। यह आंकड़ा अब बढ़कर 12 करोड़ तक पहुंच गया है। 1951 में 2 .2 करोड़ कृषि श्रमिक थे जिनकी संख्या अब 14 .4 करोड़ हो चुकी है।

सभी फोटो : विकास चौधरी / सीएसई

# हर दूसरा किसान कर्जदार

"जब भी आंकड़े बताते हैं कि भारत दुनिया में सबसे तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था है तो हम सब जश्न बनाते हैं, लेकिन इस विकास का हमें कोई फायदा नहीं मिला है। देश में हर दूसरा किसान कर्जदार है। एक भारतीय किसान हर महीने औसतन 6,426 रुपए कमाता है जबकि उसका खर्च 6,223 रुपए है। इसके अलावा केवल 15 प्रतिशत किसान कुल कृषि आय का 91 प्रतिशत कमाते हैं। हमारे बीच भीषण विषमता फैली हुई है। एक विश्लेषण से पता चलता है कि एक हेक्टेयर जमीन पर गेहूं उपजाने पर किसान 7,639 रुपए कमाता है, जबकि उत्पादन लागत 32,644 रुपए आती है। यानी एक हेक्टेयर में खेती करने पर किसान को 25,005 रुपए का भारी नुकसान उठाना पड़ता है। मेरे पास खर्च करने के पैसे नहीं होते। देश की 90 प्रतिशत जीडीपी उपभोग के जरिए ही आती है। देश में करीब 50 प्रतिशत किसान उपभोक्ता हैं अथवा ऐसे कृषि परिवार से ताल्लुक रखते हैं जिनकी आमदनी का मुख्य स्रोत कृषि है। इसका मतलब है कि जिस सेक्टर की बदौलत देश को तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था का तमगा हासिल है, वह सेक्टर ही धाराशायी हो रहा है। ऐसे में सवाल है कि क्या यह सेक्टर जिंदा रह पाएगा? इसका जवाब है न और यह संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए खतरे की घंटी है।

# जलवायु परिवर्तन की मार

"देश में साल 2019 में हर घंटे खेती से जुड़े करीब दो लोगों ने आत्महत्या की है। भारत में होने वाली कुल आत्महत्या में 7.4 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो कृषि कार्यों में लगे हैं। जलवायु परिवर्तन का हम पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से हमारी आमदनी में 25 प्रतिशत तक की कमी आएगी। देश के 100 सबसे गरीब जिले जलवायु परिवर्तन के प्रति सबसे संवेदनशील है। ये ऐसे जिले हैं जहां बड़े पैमाने पर खेती होती है। हमें हर साल 700 करोड़ रुपए का नुकसान उठाना पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन के बाद सूखे के मार से भी हम जूझ रहे हैं। दुनियाभर में सूखे की सबसे अधिक मार हम पर ही पड़ी है। प्राकृतिक आपदाओं में इसकी हिस्सेदारी भले ही पांच प्रतिशत है लेकिन साल 2009-19 में इसने 1.4 बिलियन लोगों को प्रभावित किया। भारत में 50 प्रतिशत से अधिक किसान वर्षा जल पर निर्भर हैं। यहां हर साल सूखे से 30 करोड़ किसान प्रभावित होते हैं।

# घटती जा रही है खेती से आमदनी

"मेरे साथी किसानों की नींद उड़ी हुई है। 2011 की हमारी जनगणना कहती है कि प्रतिदिन 2,000 किसान खेती छोड़ रहे हैं। परिवार की कुल आमदनी में कृषि से होने वाली आय पहले से घट रही है। 1970 में तीन-चौथाई ग्रामीण परिवारों की आय का स्रोत खेती थी। इसके 45 साल बाद 2015 में यह एक-तिहाई से भी कम रह गई है। अधिकांश परिवार अब गैर कृषि कार्यों से अधिक आय अर्जित कर रहे हैं। यहां तक कि एक तिहाड़ी मजदूर भी किसान से अधिक कमा रहा है।

From Asia's Largest Water & Environment Solutions Provider

## FULL SPECTRUM SOLUTIONS FOR EVERY SECTOR

Industry | Homes | Communities

Ion Exchange has been able to provide complete solutions for each sector, owing to ingenious expertise derived from over five decades of experience in water & environment management for industry, homes & communities and the widest range of technologies.

With our custom fit 360° solutions capability in variant sectors be it industrial, institutional, municipal or household, urban or rural, you can be rest assured of a zero-headache solution.

### Total Environment Solutions

- Pretreatment & Process Water Treatment
- Boiler & Cooling Water Treatment
- Brackish & Sea Water Desalination
- Waste-to-Energy Products
- Effluent & Sewage Treatment and Recycle

### Benefits for You

24/7 service

- Lowest Water Consumption
- Lower/Zero Discharge of Effluents
- Single Point Responsibility
- O&M for Entire Water Circuit/Utility
- Creative Ownership Option - BOT/Lease

**Our state-of-the-art manufacturing facilities are ISO 9001, ISO 14001 & ISO 45001 certified**

ION EXCHANGE (INDIA) LTD.
E-mail: contactus1@ionexchange.co.in | Website: www.ionindia.com
Ion House, Dr. E. Moses Road, Mahalaxmi, Mumbai - 400 011
Mumbai: 022 6231 2000 | Delhi: 011 6121 3200
Kolkata: 033 6813 3400 | Chennai: 044 6648 2900

ION EXCHANGE
Refreshing the Planet

# घटते किसान, बढ़ते मजदूर

देश में प्रतिदिन 2,000 किसान खेती छोड़ रहे हैं, कृषि परिवारों के युवाओं का भी इस प्राथमिक व्यवसाय से मोहभंग हो गया है। इसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि शायद अगली पीढ़ी में कोई किसान नहीं बचेगा

रिचर्ड महापात्रा

**महामारी के** दौरान कृषि एकमात्र ऐसा क्षेत्र रहा जिसने वृद्धि दर्ज की है। भारत ने खरीफ सीजन में बंपर फसल भी दर्ज की। वहीं, इस बीच देश अपने ही प्रमुख किसानों के विरोध प्रदर्शनों का भी साक्षी बन रहा। प्रदर्शन करने वाले इन अहम किसानों की मांग क्या है? वे सिर्फ उनकी उपज के लिए न्यूनतम मूल्य का आश्वासन चाहते हैं। यकीनन, हाल के इतिहास में पहली बार हम खेत, खेती और किसानों पर एक राष्ट्रीय बहस का अनुभव कर रहे हैं। यह चौंकाने वाली बात नहीं है कि देश में हर चौथा मतदाता एक किसान है, जो आर्थिक पतन के कारण संकटग्रस्त किसान बन चुका है। इसमें कोई संदेह नहीं बचा है कि भारत की कृषि को दोबारा जीवित करना देश का सबसे प्रमुख एजेंडा है। लेकिन जैसे ही हम इस क्षेत्र के बारे में ज्यादा बातचीत करते हैं, हम इसमें और अधिक बीमारियों की तलाश कर लेते हैं। सबसे महत्वपूर्ण सवाल जो अब हमें परेशान करता है, वह यह है कि आखिर कौन इस प्राथमिक आजीविका वाली गतिविधि को आगे बढ़ाएगा? देश में शायद अगली पीढ़ी में कोई किसान नहीं बचा होगा। जनगणना 2011 के अनुसार देश में हर दिन 2,000 किसान खेती छोड़ देते हैं। वहीं, कृषक समुदायों के बीच युवा शायद ही कृषि में रुचि रखते हैं। यहां तक कि कृषि विश्वविद्यालयों से स्नातक करने वाले अधिकांश छात्र अन्य व्यवसायों में चले जाते हैं। इसे "भारतीय कृषि के समृद्ध दिमागों का पलायन" (एग्रो ब्रेन ड्रेन ) कहा जाता है।

जब कृषि अर्थव्यवस्था गहरे संकट में है तो इसका काला साया खेत और गैर-कृषि कार्यबल दोनों पर पड़ रहा है। दिल्ली की एक बिजनेस इन्फॉर्मेशन कंपनी सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी की रिपोर्ट बताती है कि वर्ष 2018-19 में कृषि में सकल मूल्य बीते 14 वर्षों में सबसे कम है जबकि कोविड-19 महामारी इस स्थिति को और गंभीर बनाने जा रही है। मसलन, वर्ष 2018-19 में अनुमानित 91 लाख नौकरियां ग्रामीण भारत में और 18 लाख नौकरियां शहरी भारत में खत्म हो गईं। रिपोर्ट में कहा गया है कि ग्रामीण भारत देश की कुल आबादी का दो-तिहाई है लेकिन इसमें 84 फीसदी की नौकरी छूट गई है। इससे पहले नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस की उजागर हुई पीरियडिक लेबर फोर्स सर्वे 2017-18 की रिपोर्ट में बताया गया था कि 2011-12 और 2017-18 के बीच 3 करोड़ कृषि मजदूरों सहित कुछ 3.4 करोड़ अनौपचारिक मजदूरों ने ग्रामीण इलाकों में नौकरियां खो दीं। यह कृषि कार्यबल में 40 फीसदी की गिरावट थी।

**कई ग्रामीण बेरोजगार होने की दशा में और छोटी भूमि होने के बावजूद खेती नहीं कर रहे हैं। इससे यह पता चलता है कि भारत एक बड़े बदलाव की कगार पर है**

भारत मुख्य रूप से ग्रामीण से शहरी अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर है। इससे लोगों के व्यवसाय और आकांक्षाओं में भी बदलाव आता है। तात्कालिक चिंता यह है कि क्या भारत की खेती-किसानी से जुड़ी आबादी पहले की तरह डटी रहेगी या यह गैर-कृषि व्यवसायों में स्थानांतरित हो जाएगी। दूसरा बड़ा सवाल यह है कि क्या कृषि अपने किसानों-मजदूरों के अस्तित्व के लिए पर्याप्त आकर्षक होने के कारण जीवित रहेगी? बहुत कुछ ग्रामीण-शहरी स्थिति पर निर्भर होगा। जनगणना की परिभाषा के मुताबिक, एक बस्ती को तब शहरी (नगरपालिका, निगम, छावनी बोर्ड और एक अधिसूचित नगर क्षेत्र समिति को छोड़कर) घोषित किया जाता है जब उसकी न्यूनतम आबादी 5,000 हो और कम से कम 75 फीसदी कामकाजी पुरुष आबादी गैर-कृषि कार्यों में लगी हुई हो। साथ ही जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी हो। ऐसी बस्तियों को सेंसस टाउन भी कहा जाता है। 2001 और 2011 की जनगणना के बीच ऐसे सेंसस टाउन की संख्या 1,362 से बढ़कर 3,894 हुई है। यह इंगित करता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लोग खेती छोड़ रहे हैं या गैर-कृषि आजीविका में शामिल हो रहे हैं।

इतिहास में पहली बार हुआ कि 2011 की जनगणना के दौरान ग्रामीण भारत की जनसंख्या वृद्धि दर में गिरावट दर्ज की गई है। ऐसे संकेत मिलते हैं कि कई ग्रामीण बेरोजगार होने की दशा में और छोटी भूमि होने के बावजूद खेती नहीं कर रहे हैं। इससे यह भी पता चलता है कि भारत एक बड़े बदलाव की कगार पर है। यदि आर्थिक पहलू और रोजगार के नजरिए से देखें तो ग्रामीण भारत अब कृषि प्रधान नहीं है। नीति आयोग के लिए एक शोध पत्र में अर्थशास्त्री रमेश चंद (सरकारी थिंक टैंक के सदस्य) ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन का विश्लेषण किया है। उन्होंने अपने निष्कर्ष में कहा कि वर्ष 2004-05 के बाद से भारत एक गैर-कृषि अर्थव्यवस्था वाला देश बन गया है। किसान खेती छोड़ रहे हैं और गैर-कृषि नौकरियों में शामिल हो रहे हैं। यह एक आर्थिक निर्णय है जो उन्होंने लिया है क्योंकि वे बाद वाले विकल्प से अधिक कमाते हैं। एक किसान की आय एक गैर-किसान के पांचवें हिस्से के आसपास है। यह संरचनात्मक परिवर्तन 1991-92 में आर्थिक सुधारों के बाद आया। चंद के शोध से पता चलता है कि 1993-94 और 2004-05 के बीच कृषि क्षेत्र में वृद्धि 1.87 प्रतिशत तक घट गई जबकि गैर-कृषि अर्थव्यवस्था में विकास दर 7.93 प्रतिशत तक बढ़ गई। यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि के योगदान में भारी गिरावट के साथ आया। ग्रामीण

अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 1993-1994 में जहां 57 फीसदी था, वहीं 2004-05 में यह 39 प्रतिशत ही बचा। कृषि आय की तुलना में अन्य आय तेजी से बढ़ रही है। कृषि और गैर-कृषि आय के बीच का अंतर 1980 के मध्य में 1:3 के अनुपात से बढ़कर 2011-12 में 1: 3.12 हो गया है। 2004-05 तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि से अधिक गैर-कृषि बन गई। यह चलन अब भी जारी है।

दशकों से ज्यादातर सरकारी नीतियां खेती छोड़ने वाले लोगों को गैर-कृषि क्षेत्रों में खपाने पर केंद्रित हैं। समकालीन नीतिगत ध्यान इन क्षेत्रों में बेरोजगारी से निपटने के लिए है और उन लोगों के लिए आजीविका सुनिश्चित करने के लिए है जो कृषि में जीवित रहने में सक्षम नहीं हैं। उदाहरण के लिए ग्रामीण भारत में गैर कृषि क्षेत्र में नौकरियों के सृजन में निर्माण क्षेत्र की वर्ष 2004-05 और 2011-12 के बीच हिस्सेदारी 74 फीसदी थी। बुनियादी ढांचे में निवेश पर सरकार की राजनीतिक समझ इसलिए विकसित हुई है क्योंकि यह वो क्षेत्र है जो ग्रामीण काम करने वालों को जगह देता है। लेकिन यहां एक समस्या है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बदलाव के बावजूद गैर-कृषि क्षेत्र नौकरी चाहने वालों को खपाने में सक्षम नहीं हैं क्योंकि वे आवश्यक दर पर रोजगार पैदा करने में सक्षम नहीं हैं। मिसाल के तौर पर सुधार के पहले चरण के दौरान ग्रामीण रोजगार में 2.16 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई थी। उच्च आर्थिक वृद्धि के बावजूद सुधार के बाद के चरण में इसमें गिरावट हो गई। इसलिए सरकार का 5 खरब डॉलर अर्थव्यवस्था का मुख्य लक्ष्य भले ही हासिल हो जाए लेकिन यह उन क्षेत्रों में नौकरियों का सृजन नहीं करेगा जहां आवश्यकता है।

**वे लोग कहां खपाए जाएंगे जो वर्तमान में बड़ी संख्या में या तो बेरोजगार हैं या फिर आधे-अधूरे रोजगार में लगे हैं? वे यह जानते हुए भी कृषि से चिपके हैं कि यह लाभकारी नहीं है**

मौटे तौर पर यह एक बिना नौकरियों का विकास होगा और एक संकट के रूप में सामने आएगा। ऐसे में सवाल उठता है कि खेती छोड़ने वाले वे लोग कहां खपाए जाएंगे जो वर्तमान में बड़ी संख्या में या तो बेरोजगार हैं या फिर आधे-अधूरे रोजगार में लगे हैं। वे यह जानते हुए भी कृषि से चिपके रहते हैं कि यह लाभकारी नहीं है। लेकिन कोई कब तक नुकसान उठाने वाली आजीविका के भरोसे रह सकता है? सरकार की रणनीति है कि ऐसी ग्रामीण आबादी जो रोजगार की मांग करती है, उसे गैर-कृषि क्षेत्र में स्थानांतरित किया जाए। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय के आंकड़ों से पता चलता है कि 2004-05 और 2011-12 के दौरान लगभग 3.4 करोड़ किसान कृषि से बाहर चले गए। खेती छोड़ने की वार्षिक दर 2.04 प्रतिशत है। नीति आयोग के अनुमान के अनुसार, यदि यह प्रवृत्ति जारी रही तो 2022 यानी जिस वर्ष तक आय दोगुनी करनी है, उस वर्ष तक कुल कार्यबल में किसानों की हिस्सेदारी 55 प्रतिशत तक होगी।

भारत ही नहीं बल्कि दुनियाभर में किसानों की घटती आबादी और कृषि स्रोतों से कम होती आय को लेकर इंटरनेशनल फंड फॉर एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट की ओर से हाल ही में जारी "द 2019 रूरल डेवलपमेंट रिपोर्ट" में ग्रामीण युवाओं के बीच बेरोजगारी को लेकर एक नया आयाम जोड़ा गया है। रिपोर्ट में आबादी की प्रवृत्तियों की गणना के कई अध्ययनों को शामिल किया है, साथ ही वैश्विक स्तर पर ग्रामीण युवाओं के आर्थिक भविष्य की भी बात की गई है। रिपोर्ट का निष्कर्ष है कि ग्रामीण युवाओं की आबादी पूरी दुनिया में बढ़ रही है। खासतौर से एशिया और अफ्रीका के विकासशील और विकसित होने की दहलीज पर खड़े देशों में ऐसा दिख रहा है। वहीं, ग्रामीण युवा आबादी में यह वृद्धि ऐसे समय में आई है, जब इन क्षेत्रों में न तो प्रभावशाली आर्थिक विकास हुआ है और न ही आजीविका के विविध साधन हैं। अब प्रश्न उठता है कि इन्हें कहां रोजगार मिलेगा? इस पर विचार करें। करीब तीन-चौथाई ग्रामीण युवा उन देशों में रहते हैं, जहां कृषि मूल्य-संवर्धन सबसे कम है। रिपोर्ट में दावा किया गया है, "युवा लोगों के पास इन देशों में कृषि गतिविधियों में संलग्न होकर गरीबी से बचने का काफी कठिन समय है। अधिकांश बेहतर जीवन यापन करने के लिए अन्य क्षेत्रों में जाएंगे। यही प्रवृत्ति भारत में भी देखी गई है।" देश में ग्रामीण युवा बेरोजगारों का एक बड़ा प्रतिशत उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में पाया जाता है। मुख्य रूप से कृषि से जुड़े राज्यों में युवा आबादी बहुत बड़ी है जो खेती की तुलना में वैकल्पिक आजीविका स्रोतों की तलाश में है। अफ्रीकी देशों की तुलना में भारत में गैर कृषि रोजगार का स्तर काफी ऊंचा है। ठीक इसी समय पर अध्ययन में तर्क दिया गया है कि कृषि क्षेत्र में नए कार्यबल को जगह देने की भरपूर क्षमता है। करीब 67 फीसदी ग्रामीण युवा आबादी ऐसे क्षेत्रों में रहती है जहां कृषि की संभावनाएं हैं।

इंटरनेशनल फंड फॉर एग्रीकल्चरल डेवलमेंट (आईएफएडी) के अध्यक्ष गिलबर्ड एफ होंगबो ने कहा कि यदि हम इस पर कार्रवाई करने में विफल होते हैं तो यह बिना आशा और दिशा के मौजूद युवा आबादी को एक गुमराह पीढ़ी तैयार करने का जोखिम पैदा करती है। इसलिए कृषि की संभावना ग्रामीण युवाओं के लिए खेती को एक व्यवसाय के रूप में लेने के लिए विवश करने वाला कारक नहीं बची है। वे न तो अच्छी फसल पाते हैं और न ही कीमतें जो उनके खेती से मुंह मोड़ने का मुख्य कारण है।

# किसानों का इम्तिहान लेगा जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन से जुड़ी आपदाएं खेती को नुकसान तो पहुंचा ही रही हैं, साथ ही किसानों को पलायन के लिए भी मजबूर कर रही हैं। भविष्य में हालात बेहद डरावने हो सकते हैं

**रिचर्ड महापात्रा**

फोटो : निधि जामवाल / सीएसई

संयुक्त राष्ट्र ने पिछले साल मार्च में जारी विश्व जल विकास रिपोर्ट में चेतावनी दी थी कि जलवायु परिवर्तन वैश्विक खाद्य उत्पादन के तरीके को पूरी तरह बदल देगा। इससे गंभीर और व्यापक खाद्य असुरक्षा पैदा होगी क्योंकि खेती पूरी तरह से जलवायु और स्थानीय मौसम से जुड़ी है। मौसम और जल उपलब्धता में मामूली बदलाव से उपज में भारी अंतर आता है। इसका नतीजा पैदावार में भारी नुकसान के तौर पर सामने आता है। दूसरी ओर इन परिवर्तनों के कारण खाद्य कीमतों में वृद्धि होगी, जिससे ग्रामीण गरीबी बढ़ेगी। भारत सहित विश्वभर की प्रमुख कृषि प्रणालियां जलवायु प्रभावों से सबसे अधिक खतरे में हैं।

मई 2019 में *प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल अकैडमी ऑफ साइंसेस ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका* जर्नल द्वारा प्रकाशित लेख के अनुसार, 2040 तक चार प्रमुख फसलों- गेहूं, सोयाबीन, चावल और मक्का पर क्षेत्रीय वर्षा पैटर्न का प्रभाव दिखेगा। रिपोर्ट में कहा गया है कि इन फसलों को प्रमुखता से उगाने वाले भारत सहित अन्य देश स्थायी सूखे का सामना करेंगे। अन्य देश जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से आर्द्र परिस्थितियों का सामना करेंगे।

वर्तमान में भारत में गेहूं की खेती के लिए जो समर्पित भूमि है, वह ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन के वर्तमान रुझानों के तहत 2020 और 2060 के बीच अधिक वर्षा हासिल करेगी। जबकि मेक्सिको और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों के भूमि क्षेत्रों में क्रमशः 87 और 99 प्रतिशत भूमि कम वर्षा प्राप्त करेगी। रिपोर्ट के अनुमान से पता चलता है कि ऊष्णकटिबंधीय और उत्तरी भौगोलिक हिस्सा आर्द्र हो जाएगा, जबकि अफ्रीका के कुछ हिस्से, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप सूखे हो जाएंगे। वहीं, भारत में चावल की खेती वाली 100 फीसदी भूमि, मक्का की 91 प्रतिशत भूमि और सोयाबीन की 80 प्रतिशत भूमि अगले 40 वर्षों के भीतर आर्द्र परिस्थितियों से गुजरेगी। रिपोर्ट में कहा गया है कि अगले 50 से 100 वर्षों के दौरान तापमान और वर्षा की प्रवृत्ति में बदलाव के चलते न सिर्फ कृषि प्रभावित होगी बल्कि इसका खाद्य सुरक्षा पर भी असर पड़ेगा। उच्च तापमान के साथ बढ़ी हुई वर्षा, सूखा और बाढ़ ही जलवायु परिवर्तन का रूप है। इसके फलस्वरूप सतह का जल और भूजल घटेगा, मौसमी पानी तेजी से बह जाएगा, बाढ़ आएगी, लवणता बढ़ेगी और उत्पादकता कम हो जाएगी। रिपोर्ट के अनुसार, सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र के कृषि क्षेत्र को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल बनाने की गुंजाइश कम है। ये क्षेत्र जलवायु परिवर्तन प्रति बहुत संवेदनशील हैं।

करीब दो साल पहले सरकार ने स्वीकार किया था जलवायु परिवर्तन के चलते 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने के वादे को अमलीजामा पहनाने में दिक्कत आएगी। आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18 ने कहा कि कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के लिए चिंता का विषय है। सर्वेक्षण में कहा गया है, "जलवायु परिवर्तन से मध्यम अवधि में कृषि आय में 20-25 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है।" इसमें कहा गया कि कृषि संकट को दूर करने और किसानों की आय दोगुनी करने के लिए ठोस कार्रवाई की जरूरत है। सर्वेक्षण में कहा गया है, "खरीफ और रबी के मौसम में तापमान के झटके से किसानों की आय औसतन क्रमशः 4.3 और 4.1 प्रतिशत कम हो जाती है। वहीं अत्यधिक वर्षा से इन दोनों फसल चक्रों में आय क्रमशः 13.7 और 5.5 प्रतिशत घट सकती है।"

**जलवायु परिवर्तन का आय पर प्रभाव उन क्षेत्रों पर अधिक होगा जहां खेती वर्षा पर आश्रित है। इन क्षेत्रों में 60 प्रतिशत कृषि भूमि क्षेत्र है और 60 प्रतिशत किसान भी यहीं रहते हैं**

जलवायु परिवर्तन का आय पर प्रभाव उन क्षेत्रों पर अधिक होगा जहां खेती वर्षा पर आश्रित है। इन क्षेत्रों में 60 प्रतिशत कृषि भूमि क्षेत्र है और देश के 60 प्रतिशत किसान भी यहीं रहते हैं। सर्वेक्षण के अनुसार, ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट नहीं है कि कृषि से प्राप्त होने वाली आय किस दिशा जाएगी क्योंकि एक तरफ मौसम के झटकों से उत्पादन कम होगा और दूसरी तरफ आपूर्ति में कमी से स्थानीय स्तर पर कीमतें बढ़ जाएंगी। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि आपूर्ति में कमी या झटके का नतीजा कम राजस्व के रूप में दिखेगा।

सर्वेक्षण के अनुसार, जिस साल तापमान 1 डिग्री सेल्सियस अधिक होगा, तब खरीफ सीजन के दौरान किसान की आय में 6.2 प्रतिशत गिरेगी। वर्षा वाले जिलों में रबी के दौरान आय में 6 प्रतिशत की गिरावट होगी। इसी तरह, जिस साल बारिश औसत से 100 मिलीमीटर कम होगी, तब खरीफ के दौरान किसान की आय में 15 फीसदी और रबी सीजन के दौरान 7 फीसदी की गिरावट आएगी। अनुमान है कि जलवायु परिवर्तन से किसानों की आय औसतन 15 से 18 प्रतिशत कम होगी। बारिश वाले क्षेत्रों में यह नुकसान 20 से 25 प्रतिशत के बीच रहेगा। ये आंकड़े डरावने हैं क्योंकि भारत में कृषि से प्राप्त होने वाली आय पहले से निम्न स्तर पर है। सीधे शब्दों में इसका अर्थ है कि किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य अप्रासंगिक हो चुका है।

# मौत का फंदा

भारत में प्रतिदिन 28 किसान व कृषि श्रमिक आत्महत्या करते हैं

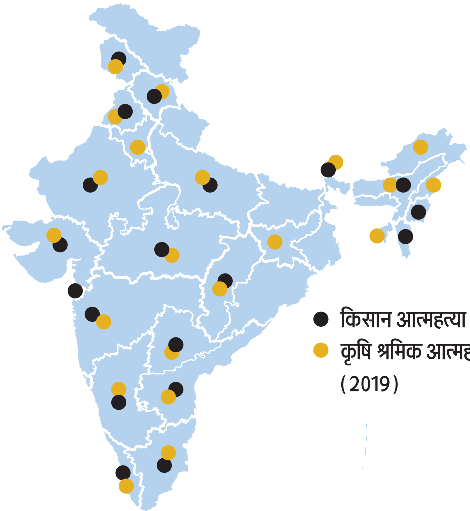


**17**
राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में वर्ष 2019 में किसान आत्महत्याएं दर्ज की गईं। 2018 में ऐसे 20 राज्य थे

**24**
राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में वर्ष 2019 में कृषि श्रमिकों द्वारा आत्महत्याएं दर्ज की गईं। 2018 में ऐसे 21 राज्य थे

**9**
राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में वर्ष 2019 व 2018 के बीच किसान आत्महत्याओं में वृद्धि हुई

● 2019 में आत्महत्या के मामले ● 2018 में आत्महत्या के मामले

किसान# आत्महत्या

| | 2019 | 2018 |
|---|---|---|
| कुल | 5,957 | 5,763 |
| आंध्र प्रदेश | 628 | 365 |
| असम | 26 | 5 |
| छत्तीसगढ़ | 233 | 182 |
| गुजरात | 3 | 21 |
| हिमाचल प्रदेश | 12 | 5 |
| जम्मू एवं कश्मीर | 0 | 5 |
| कर्नाटक | 1331 | 1365 |
| केरल | 22 | 25 |
| मध्य प्रदेश | 142 | 303 |
| महाराष्ट्र | 2,680 | 2,239 |
| मणिपुर | 0 | 2 |
| मिजोरम | 22 | 17 |
| पंजाब | 239 | 229 |
| राजस्थान | 2 | 2 |
| सिक्किम | 0 | 1 |
| तमिलनाडु | 6 | 6 |
| तेलंगाना | 491 | 900 |
| उत्तर प्रदेश | 108 | 80 |
| अंडमान एवं निकोबार | 5 | 4 |
| दादरा एवं नगर हवेली | 1 | 7 |

जम्मू एवं कश्मीर को पूर्ण राज्य माना गया है
# किसान जो बिना कृषि श्रमिक की मदद से खुद खेती करता है
स्रोत: नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी रिपोर्ट ऑन एक्सीडेंटल डेथ्स एंड स्यूसाइड्स इन इंडिया

CSE-DTE DATA CENTRE

## आत्महत्या के कारण

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो किसान आत्महत्या के कारण नहीं बताता लेकिन 2016-17 में जारी सरकारी रिपोर्ट फार्मर्स स्यूसाइड इन इंडिया : कॉजेस एंड पॉलिसी प्रिस्क्रिप्सन रिपोर्ट में इसके तीन कारण बताए गए हैं

- मॉनसून की मार से फसलों को लगातार नुकसान
- पानी के संसाधनों का अभाव
- कीटों का हमला/ बीमारियां

अब 2020 की स्थितियों पर अगर नजर डालते हैं। यह साल मौसम के लिहाज से उथल-पुथल वाला रहा। इसने ज्यादा उत्तर प्रदेश और बिहार जैसी घनी आबादी वाले राज्यों को बुरी तरह प्रभावित किया। मौसम विभाग के अनुसार, साल 2020 में इन दोनों राज्यों में गर्जन, आसमानी बिजली और शीतलहर के चलते 350 से ज्यादा लोगों की मौत हुई। देश के अलग-अलग हिस्सों में भारी बारिश और बाढ़ के कारण 600 से अधिक लोगों को जान गंवानी पड़ी। मौसम विभाग के मुताबिक, "जनवरी में शीतलहर से कम से कम 150 लोगों की मौत हुई। इनमें 88 लोग अकेले उत्तर प्रदेश में मारे गए। बिहार में 45 व झारखंड में 16 लोगों की जान गई।

मौसम विभाग के अनुसार, 2020 में सतह का सालाना औसतन तापमान सामान्य से 0.290 डिग्री सेल्सियस (1981-2010 के आंकड़ों के आधार पर) अधिक था। यह साल 1901 के बाद आठवां सबसे गर्म साल रहा। 2020 में उत्तरी हिंद महासागर के ऊपर पांच चक्रवात बने। इनमें सुपर चक्रवात अम्फान, बेहद गंभीर चक्रवात निवार और गति, गंभीर चक्रवात की श्रेणी में निसर्ग और चक्रवात बुरेवी शामिल थे। इनमें निसर्ग और गति अरब सागर में बने, शेष तीन बंगाल की खाड़ी के ऊपर बने। अम्फान प्री-मॉनसून सीजन में बना था और जिसने 20 मई 2020 को सुंदरवन से पश्चिम बंगाल तट को पार किया। इससे 90 लोगों और 4,000 पशुओं की मौत हुई। गंभीर श्रेणी वाला चक्रवात निसर्ग मॉनसून सीजन में बना और इसने 3 जून 2020 को महाराष्ट्र तट को पार किया। इससे चार लोगों और 2,000 पशुओं की मौत हो गई।

मौसम की इन सभी घटनाओं ने 2 करोड़ हेक्टेयर से अधिक कृषि भूमि को प्रभावित किया। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी आपदाएं भारतीय किसानों पर लगातार कहर ढा रही हैं। वर्ष 2019-20 में इन मौसमी घटनाओं ने भारत में 1.4 करोड़ हेक्टेयर से अधिक कृषि भूमि को प्रभावित किया। वर्ल्ड रिस्क इंडेक्स (डब्ल्यूआरआई) 2020 के अनुसार, जलवायु आपदाओं से निपटने के लिए भारत की तैयारी काफी कमजोर है। यही वजह है कि वह प्राकृतिक आपदाओं के प्रति बेहद संवेदनशील है। भारत डब्ल्यूआरआई 2020 रैंक में 181 देशों में 89वें स्थान पर रहा। इंडेक्स में भारत दक्षिण एशिया के देशों में चौथा सबसे जोखिम वाला देश था। भारत दक्षिण एशियाई देशों में बांग्लादेश, अफगानिस्तान और पाकिस्तान के बाद चौथा सबसे ज्यादा जोखिम वाले देश था। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी आपदाएं केवल फसलों को ही नुकसान नहीं पहुंचा रही हैं बल्कि ये पलायन भी बढ़ा रही हैं और पलायन करने वाले अधिकांश लघु और सीमांत किसान हैं। सितंबर 2020 में *नेचर क्लाइमेट चेंज* नामक जर्नल में प्रकाशित एक नए अध्ययन में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन से जुड़ा पलायन मुख्य रूप से उन देशों में होता है जहां कृषि पर निर्भरता अधिक है। मौसमी आपदाओं से आजिज आकर ही लोग पलायन को मजबूर होते हैं।

**आपदाएं केवल फसलों को ही नुकसान नहीं पहुंचा रही हैं बल्कि ये पलायन भी बढ़ा रही हैं और पलायन करने वाले अधिकांश लघु और सीमांत किसान हैं**

अध्ययन के मुख्य लेखक और पोट्सडेम इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च (पीआईके) व ऑस्ट्रियन अकैडमी ऑफ साइंसेस के विएना इंस्टीट्यूट ऑफ डेमोग्राफी में वैज्ञानिक रोमन हॉफमैन के अनुसार, "पर्यावरण के कारक पलायन बढ़ा सकते हैं लेकिन यह काफी हद तक देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थितियों पर निर्भर है।" उन्होंने आगे कहा, "निम्न और उच्च आय वाले देशों में जलवायु परिवर्तन का पलायन पर असर अलग-अलग है। अक्सर गरीब लोग गरीबी के कारण पलायन की स्थिति में नहीं होते इसलिए आपदाओं में फंस जाते हैं। अमीर देशों में लोगों के पास संकट से जूझने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन होते हैं और इनके दम पर वे आपदाओं से जूझ सकते हैं। मध्यम आय वाले क्षेत्रों में कृषि पर निर्भर लोग ही पलायन अधिक करते हैं और इन्हीं पर आपदाओं का ज्यादा असर होता है।" अध्ययन में पाया गया है कि लैटिन अमेरिकी, कैरेबियन, उप सहारा अफ्रीका, पश्चिम और दक्षिण पूर्वी एशिया में पर्यावरण से संबंधित नुकसान अधिक नजर आता है। अध्ययन के अनुसार, इन क्षेत्रों की आबादी चक्रवाती तूफानों, भारी बारिश, बाढ़ आदि से सबसे ज्यादा नुकसान झेलती है। पिछले दो वर्षों में उत्तरी हिंद महासागर क्षेत्र में अप्रत्याशित तौर पर चक्रवातों की संख्या और तीव्रता में बड़ी वृद्धि देखी गई है। इनमें मई 2020 में बंगाल की खाड़ी में आए चक्रवाती तूफान अम्फान और मई 2019 में फानी ऐसे ही खतरनाक चक्रवाती तूफान थे। इन दोनों बड़े तूफानों ने भारत और बांग्लादेश के पूर्वी तट पर बड़े पैमाने पर जानमाल को नुकसान पहुंचाया। साल 2015 में सीरिया से बड़ी संख्या में निकले शरणार्थी और 2018 में मध्य अमेरिका से संयुक्त राज्य में लोगों का पलायन इन देशों में पड़े भयंकर सूखे का भी परिणाम था।

हैदराबाद स्थित इंटरनेशनल सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट

फोटो : प्रशांत रवि / सीएसई

जलवायु परिवर्तन से जुड़ी आपदाएं भारतीय किसानों पर लगातार कहर ढा रही हैं

फॉर ड्राईलैंड एग्रीकल्चर (सीआरआईडीए) के पूर्व निदेशक बी. वेंकटेश्वरवर का कहना है, "जलवायु परिवर्तन खाद्य सुरक्षा के सभी तीन पहलुओं- उपलब्धता, पहुंच और खपत को प्रभावित करता है। जब उत्पादन कम हो जाता है तो भोजन की उपलब्धता भी कम हो जाती है। जलवायु परिवर्तन सबसे ज्यादा नुकसान गरीबों को पहुंचाता है क्योंकि उनके पास भोजन खरीदने के लिए पर्याप्त आय नहीं है। इससे भोजन तक उनकी पहुंच प्रभावित होती है। उनका स्वास्थ्य और उपभोग भी प्रभावित होता है।" उनके अनुसार, भारत में हर साल जलवायु परिवर्तन का कृषि पर लगभग 4 से 9 प्रतिशत प्रभाव पड़ता है। भारत की जीडीपी में कृषि का योगदान 15 प्रतिशत है। जलवायु परिवर्तन से जीडीपी में लगभग 1.5 प्रतिशत का नुकसान होता है। उनका कहना है कि चावल, गेहूं, मक्का और बाजरा इससे सर्वाधिक प्रभावित हैं।

जलवायु परिवर्तन के असर से 2030 तक चावल और गेहूं की पैदावार में 6 से 10 प्रतिशत की कमी देखी जा सकती है। आलू, सोयाबीन, चना और सरसों जैसी फसलों में इसका नगण्य अथवा सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। उनका कहना है, "सोयाबीन और चना जैसी फसलें वायुमंडल में कार्बनडाईऑक्साइड के उच्च स्तर से बेहतर होंगी। लेकिन इसका सकारात्मक प्रभाव 10-15 साल से अधिक रहने की संभावना नहीं है।" उत्तर भारत के पंजाब और हरियाणा में सरसों की खेती पर सकारात्मक असर हो सकता है क्योंकि यहां का तापमान सर्दियों में बहुत कम होता है। तापमान में 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि इसके उत्पादन पर अधिक असर नहीं डालेगी। लेकिन पूर्वी और मध्य भारत में तापमान में इतनी वृद्धि का नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

कार्बनडाईऑक्साइड के बढ़े हुए स्तर पर फायदा आलू की पैदावार को होगा। केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान के विशेषज्ञों ने अपने शोधपत्र में भी यही निष्कर्ष निकाला है। शोधपत्र कहता है कि तापमान में 1 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी और कार्बनडाईऑक्साइड 550 पीपीएम होने पर आलू की पैदावार 11.12 प्रतिशत बढ़ जाएगी। हालांकि, कार्बनडाईऑक्साइड में वृद्धि के चलते तापमान में 3 डिग्री सेल्सियस वृद्धि की संभावना है जिसके कारण 2050 में आलू उत्पादन में 13.72 प्रतिशत गिरावट की संभावना है। बारिश की अनिश्चितता से खरीफ की फसल अधिक प्रभावित होगी, जबकि रबी की फसल पर कम तापमान का असर पड़ेगा। तापमान में 1 डिग्री सेल्सियस वृद्धि से रबी के मौसम में गेहूं पर नकारात्मक प्रभाव की आशंका है। बढ़े तापमान से 4 मीट्रिक टन गेहूं को नुकसान हो सकता है। इसी तरह वायुमंडल में कार्बनडाईऑक्साइड के ऊंचे स्तर के कारण फलियों की पैदावार बढ़ सकती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जलवायु परिवर्तन का कृषि पर व्यापक असर पड़ेगा और अधिकांश असर नकारात्मक होगा।

# भारत कृषि क्षेत्र में विश्व की अग्रणी आर्थिक शक्ति!

**देश की स्वतंत्रता के समय देश की सकल आय में कृषि का हिस्सा 61 प्रतिशत था, अब यह घटकर 16-17 प्रतिशत रह गया**

**सोमपाल शास्त्री**

**भारत के** जनजीवन एवं आर्थिकी में कृषि की भूमिका सदा से अहम रही है और भविष्य में भी रहने वाली है। आधुनिक जगत के कतिपय समीक्षक और अर्थशास्त्री यदाकदा कृषि के योगदान को कम आंकने का प्रयास करते दिख पड़ते हैं। उनका मुख्य तर्क है कि स्वतंत्रता के समय देश की सकल आय में कृषि का भाग लगभग 61 प्रतिशत था, जो अब घटकर 16-17 प्रतिशत रह गया है और आने वाले वर्षों में सतत कम होता जाएगा। सर्वविदित तथ्य है कि आधुनिक तकनीकी एवं औद्योगीकरण के विकास के साथ-साथ जब अर्थव्यवस्था के अन्य घटकों का विस्तार होता है तब खेती पर निर्भर रहने वाली जनसंख्या का अनुपात तथा कृषि का अंशदान भी कम होता जाता है। विश्व के सभी देशों, विशेषकर विकसित कहे जाने वाले देशों में ऐसा ही हुआ है। भारत सहित सब विकासशील देश उसी मॉडल का अनुसरण कर रहे हैं, जो स्वाभाविक है। तथापि हमारे देश में आज भी लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या और 45 प्रतिशत रोजगार खेती में ही है। कुल निर्यात में 12 से 14 प्रतिशत हिस्सा कृषि उत्पादों का है। सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों की ग्रामीण शाखाओं का ऋण और जमा का अनुपात

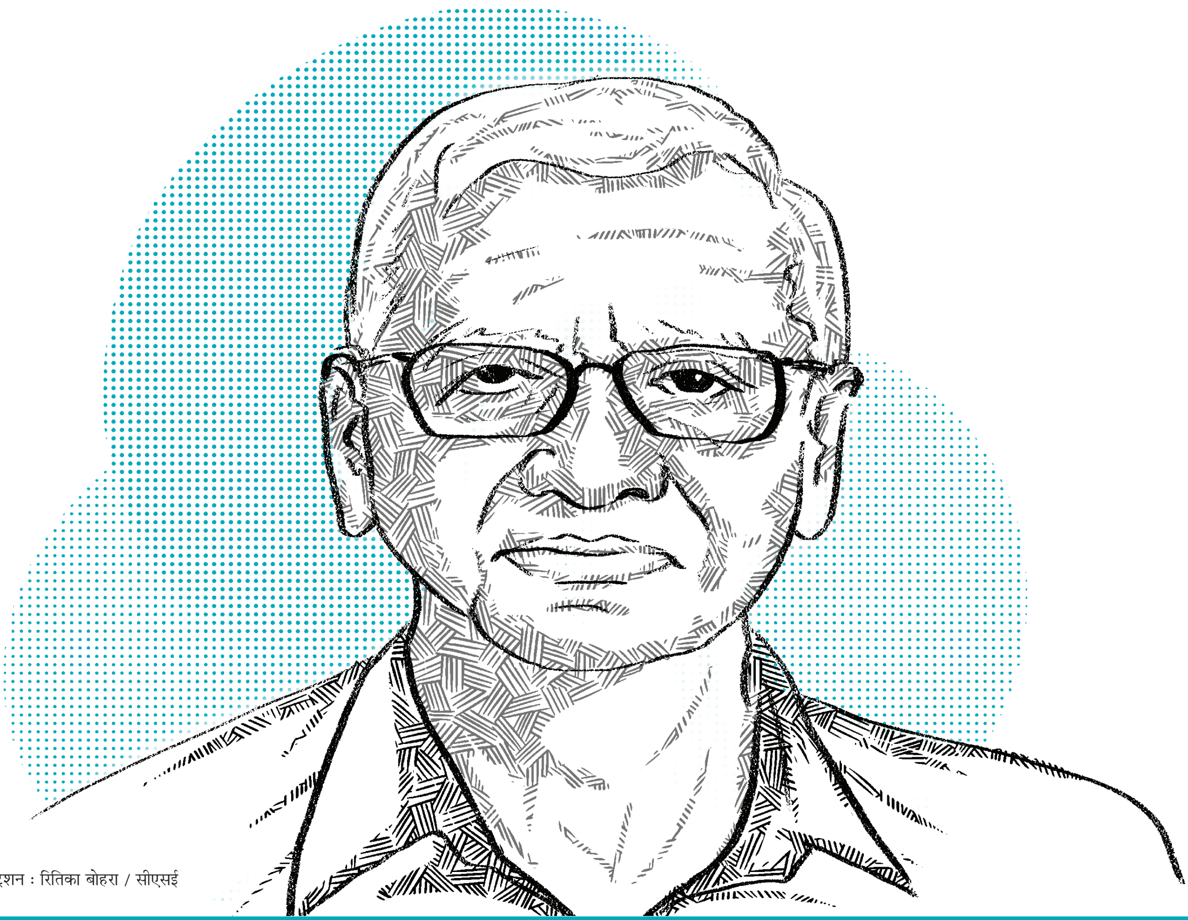

इलस्ट्रेशन : रितिका बोहरा / सीएसई

लंबे समय से 30:70 रहता है। इसका सीधा अर्थ है कि ग्रामीणजन द्वारा बैंकों में जमा की जानेवाली राशि का केवल 30 प्रतिशत भाग ग्रामीण ऋण के रूप में दिया जाता है। शेष 70 प्रतिशत रकम अर्थव्यवस्था के अन्य घटकों के वित्तपोषण हेतु काम आती है। विनिर्मित उत्पादों और सेवाओं की लगभग 45-46 प्रतिशत मांग गांवों से आती है, जिसका मुख्य स्रोत यानि क्रयशक्ति खेती पर आधारित है। शहरों, उद्योगों, सेना एवं अर्द्धसैनिक बलों में काम करने वाले कर्मियों की 80 से 90 प्रतिशत संख्या ग्रामीणों की है।

इन सब आंकड़ों से सिद्ध होता है कि अभी भी कृषक एवं ग्रामीण समाज का योगदान न केवल अन्य घटकों की अपेक्षा अधिक है बल्कि उन घटकों के अपने विकास हेतु भी अपेक्षित है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के पक्षधर अक्सर दलील देते हैं कि अब तो हमारे पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा है और अंतरराष्ट्रीय बाजार में अधिकांश खाद्य पदार्थ हमारे आंतरिक बाजार से कम दाम पर उपलब्ध हैं, अतः उन्हें आयात करना आर्थिक दृष्टि से लाभकर रहेगा। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना नितांत आवश्यक है कि कृषि और विशेषतः खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भरता न केवल खाद्य एवं पौष्टिक सुरक्षा बल्कि सीधे राष्ट्र की सुरक्षा का अपरिहार्य अंग है। खाद्यान्न के अभाव से उत्पन्न संकट के कारण होने वाली जनधन की भयावह क्षति और त्रासदी को भारत तथा जापान जैसे देशों ने द्वितीय विश्व युद्ध के काल में जिस प्रकार भुगता है उसे याद करके दिल कांप उठता है। इतना ही महत्वपूर्ण यह तथ्य है कि भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में यदि खाद्यान्न की कमी होने पर आयात करना पड़े तो अंतरराष्ट्रीय बाजार में मूल्य तुरंत बढ़ जाते हैं और उसकी स्वाधीनता को भी खतरा पैदा हो जाता है। इतिहास में भारत सहित कई देशों को ऐसा कटु अनुभव हो चुका है।

**बैंकों की ग्रामीण शाखाओं का ऋण व जमा का अनुपात 30 : 70 रहता है। इसका अर्थ है कि ग्रामीणजन द्वारा बैंकों में जमा की जाने वाली राशि का 30 प्रतिशत ग्रामीण ऋण के रूप में दिया जाता**

अर्थशास्त्रियों का एक बड़ा वर्ग यह दर्शाने का प्रयास करता है कि भारत में कृषि का उत्पादन अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका है और गेहूं तथा चावल जैसी कई जिंस का उत्पादन तो लगातार आवश्यकता से अधिक होने से उनके भंडारण और बड़ी मात्रा में सड़कर खराब होने के साथ-साथ सरकार के वित्तीय संसाधनों पर अनावश्यक दबाव बढ़ता जा रहा है। उनका तर्क है कि इन उत्पादों के सतत बढ़ते और बाजार से ऊंचे न्यूनतम समर्थन मूल्यों के कारण ऐसा हो रहा है। उनकी मान्यता है कि अब न तो कृषि का उत्पादन बढ़ाने की अवश्यकता है और न गुंजाइश। वे सुझाव देते हैं कि न्यूनतम समर्थन मूल्य की व्यवस्था को समाप्त कर खेती को बाजार के भरोसे छोड़ने से स्थिति स्वतः संतुलित हो जाएगी। परंतु वे यह भूल जाते हैं कि वर्तमान भारतीय कृषि कई प्रकार के असंतुलनों से ग्रस्त है। पहला तो यह कि कृषि के उत्पादन में वृद्धि देश के केवल उन 45 प्रतिशत क्षेत्रों में हुई है जहां सिंचाई के सुनिश्चित साधन उपलब्ध हैं। वहां भूमि की औसत उत्पादकता चार टन प्रति हेक्टेयर के आसपास पहुंच चुकी है और हमारी तथाकथित हरित क्रांति इन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रही है। शेष 55 प्रतिशत भू-भाग की खेती अभी भी वर्षा के भरोसे होने के कारण प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 1.2 टन पर ही अटकी है। पूरे देश के ग्रामीण गरीबों और कुपोषितों की 80 प्रतिशत संख्या इन्हीं इलाकों में बसती है। दूसरा असंतुलन है कि गेहूं और धान का उत्पादन तो आवश्यकता से अधिक हो रहा है, जबकि तिलहन और दलहन का भारी मात्रा में आयात करना पड़ता है। तीसरी समस्या है कि गन्ने से बनने वाली चीनी का उत्पादन आवश्यकता से अधिक है और उसी से बन सकने वाले एथनॉल तथा कई अन्य बहुमूल्य पदार्थों का आयात होता है। चौथे, इमारती लकड़ी तथा कागज बनाने वाली लुग्दी सहित वृक्ष आधारित कई उत्पाद जो भारत में पैदा किए जा सकते हैं वे भी आयात होते हैं। पांचवां, कृषि व्यवसाय में रत और ग्रामीणजन की औसत आय तथा अन्य व्यवसायों में लगे लोगों की औसत आय में अंतर निरंतर बढ़ता जा रहा है। 1970 के दशक में यह विषमता लगभग एक और तीन की थी जो अब बढ़कर एक के मुकाबले 16 गुणा हो चुकी है।

छठा असंतुलन और भी भयावह है जो कृषि की आधुनिक बौनी किस्मों, एक फसली और रसायन आधारित तकनीक के कारण पैदा हुआ है, जिसे तथाकथित हरित क्रांति के दुष्प्रभाव कहा जाता है। बौनी किस्मों की कई विशेषताएं हैं। हमारी परंपरागत फसलों में भूसे और अनाज का अनुपात 70:30 होता है, बौनी फसलों में 50:50 है। इस कारण अन्न की पौष्टिकता, पशुचारे की मात्रा और मिट्टी में मिलकर उसकी उर्वरकता बनाये रखने वाली जैविक सामग्री का अभाव लगातार बढ़ता जा रहा है। परिणामतः चारे के दाम बढ़ने से दुग्ध उत्पादन की लागत बढ़ी है। बौनी फसलों की जड़ें कम गहरी होने तथा रासायनिक उर्वरक अधिक चाहने के कारण सिंचाई की आवश्यकता डेढ़ से दोगुनी होने से भूमिगत जल स्रोतों का अतिदोहन हुआ है और जलस्तर भयावह गति से नीचे जा रहा है। सिंचाई और बिजली की लागत बढ़ती जा रही है। अधिक सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा की संरचना विकृत हुई है। मिट्टी के कण बारीक होने से जड़ों को प्राणवायु कम पहुंचती हैं। जिंक, लौह, मैगनीज, गंधक सहित नौ दस महत्वपूर्ण पौष्टिक उर्वरक तत्त्वों की भारी कमी हो गई है। अधिक रासायनिक खाद, कीटनाशक, परजीवीनाशक, फुंगीनाशक और खरपतवार नाशक विषैले पदार्थों के इस्तेमाल से सारे जलस्रोत, दूध, सब्जी, फल, मछली, अंडा, अन्न सहित पूरी खाद्य श्रृंखला विषयुक्त होकर आंत्रशोथ, त्वचा, कैंसर, गठिया, गुर्दे, हृदय और मस्तिष्क की कोशिकाओं को हानि पहुंचाकर भयंकर असाध्य रोग पैदा हो रहे हैं। इन सबके परिणाम स्वरूप मनुष्यों और पशुओं की शारीरिक रोग निरोध क्षमता घट रही है और दवाओं तथा चिकित्सा पर होने वाले व्यय में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट द्वारा किए सर्वेक्षण में शिशु को पिलाए जाने वाले मां के दूध में भी विषैले तत्त्वों के अवशेष निर्धारित मात्रा से 84 गुणा पाये गए हैं। कृषि के लिये उपयोगी मित्रकीटों की कई

प्रजातियां लुप्त हो गई हैं तथा ऐसे शत्रुकीटों की संख्या बढ़ी है जो कीटनाशकों के छिड़काव से भी नहीं मरते और उनसे निपटने हेतु क्रमशः अधिकाधिक विषैले रसायनों का प्रयोग करना पड़ रहा है। एकफसली पद्धति के कारण परंपरागत फसल परिवर्तन प्रणाली और जैवविविधता का भयावह ह्रास हुआ है।

इस कारण भी मृदा की प्राकृतिक उत्पादकता और मानव व पशु शरीरों का पौष्टिक संतुलन बिगड़ा है तथा रोग निरोध शक्ति क्षीण होती जा रही है। रोग प्रतिरोध का स्वास्थ्य के लिये क्या महत्त्व है इसका प्रमाण यह है कि वर्तमान कोरोना संक्रमण का सारा प्रभाव शहरों तक सीमित रहा है। ग्रामीणजन लगभग अप्रभावित रहे हैं।

उपरोक्त समस्याओं से यदि समय रहते नहीं निपटा गया तो पूरी स्थिति और भी भयावह और लाइलाज हो सकती है। इनके हल के लिए एक समग्र समेकित रणनीति अविलंब बनाए जाने की अपेक्षा है, जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा यहां प्रस्तुत की जा रही है।

1. जल संसाधनों के समग्र विकास हेतु एक दसवर्षीय योजना बने ताकि भारत के प्रत्येक खेत को सुनिश्चित सिंचाई और प्रत्येक गांव को शुद्ध पेय जल प्राप्त हो सके। इस मद पर होनेवाले निवेश का व्यय केंद्र एवं सभी राज्य सरकारें आधा-आधा वहन करें।
2. केवल भंडारण योग्य जिंसें ही नहीं बल्कि दूध, फल, सब्ज़ी आदि जल्दी खराब होने वाले उत्पादों सहित सब उत्पादों की लागत का आकलन औद्योगिक उत्पादों की लागत के फार्मूले से किया जाए और उसके ऊपर एक वाजिब मुनाफा जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य दिए जाने को कानूनी अधिकार बनाया जाए।
3. कृषि लागत एवं मूल्य आयोग को संवैधानिक दर्जा दिया जाए और उसकी सदस्यता में कृषकों, व्यापारियों, प्रशासकों, उपभोक्ताओं, न्यायविदों, अर्थशास्त्रियों को सम्मिलित किया जाए तथा उसकी सिफारिशें सरकार पर बाध्यकारी हों।
4. पूरे देश में नियमित मंडियों के निर्माण की पंचवर्षीय योजना क्रियान्वित की जाए ताकि प्रत्येक दस-पंद्रह गांवों के समूह को एक मंडी की सुविधा उपलब्ध हो और उसमें सब जिंसों की बोली न्यूनतम समर्थन मूल्य से शुरू हो।
5. मंडियों में व्यापार करने वालों को लाइसेंस लिए जाने की बाध्यता समाप्त हो, जिसके कारण एकाधिकार और भ्रष्टाचार होता है। इसके बजाय केवल पंजीकरण की व्यवस्था हो ताकि अन्य व्यवसायों की भांति इस व्यापार में प्रवेश और निकासी मुक्त रूप से हो और प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन मिले।
6. सब प्रकार की कृषि जिंसों के भंडारण की देशव्यापी समयबद्ध योजना बने जिसके तहत मंडी स्थलों के आसपास गोदामों और शीतभंडारों की स्थापना हो जिनमें किसान अपनी जिंस रखकर रसीद प्राप्त करें जिसे हुंडी के तौर पर बैंक से भुनाया जा सके और यथासमय जिंस बेचकर बैंक की अदायगी कर सके। जापान में ऐसी व्यवस्था लंबे समय से उपलब्ध है।
7. उपरोक्त व्यवस्थाओं के साथ-साथ कृषि उत्पादों के व्यापार, भंडारण, प्रसंस्करण और निर्यात आदि पर लगे सब प्रतिबंध समाप्त कर दिये जाएं ताकि देश-विदेश के बाजार का लाभ कृषि को मिल सके। भारत के सब्जी, फल, बीटा केसीन युक्त दूध, देसी अनाजों, दालों, खाद्य तेलों की विविधता और पौष्टिक गुणवत्ता विश्वभर में अनूठी है। इनके उत्पादन और निर्यात की महती संभावना है।
8. पशुधन की हमारी जैव विविधता और नस्लें भी अनुपम हैं। उनकी और उनके उत्पादों की विश्वभर में भारी मांग है। अतः उनके संरक्षण और चयनित संवर्धन की भी एक राष्ट्रव्यापी योजना अत्यंत लाभकर हो सकती है।

**कृषि क्षेत्र की समस्याओं से यदि समय रहते नहीं निपटा गया तो पूरी स्थिति और भी भयावह और लाइलाज हो सकती है। इसके हल के लिए एक समग्र समेकित रणनीति अविलंब बनाए जाने की अपेक्षा है**

9. सर्वाधिक संभावना हमारे औषधीय एवं सुगंधिदायक पौधों की खेती और उनके आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, आमची और तिब्बी जैसी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों में उपयोग और मूल्य संवर्धन की है, जिनका पूरे विश्व में निर्यात हो सकता है।
10. चीनी मिलों और उनके उत्पादों पर बचे खुचे नियंत्रण तुरंत समाप्त किए जाएं। इस उद्योग में एथनॉल सहित अनेक बहुमूल्य रासायनिक पदार्थों और औषधियों के निर्माण की भारी संभाव्यता से देश आयात कम और निर्यात बढ़ाकर लाभान्वित हो सकता है।
11. खेतों में उगाए जाने वाले वृक्षों पर वन कानून लगाकर नियंत्रण लगाया जाना सर्वथा अनुचित है। इसे तुरंत समाप्त कर कृषि वानिकी को फिनलैंड जैसे देश की नीति के अनुसार प्रोत्साहित किया जाए तो लगभग 50,000 करोड़ रुपए का आयात कम हो सकता है और बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत हो सकती है।
12. जैविक कृषि को प्रोत्साहित करने की एक सार्वदेशिक योजना बनाकर कृषि अनुसंधान और शिक्षण की सब संस्थाओं और विश्व विद्यालयों को उसके जीवंत मॉडल बनाने और प्रसारित करने के समयबद्ध निर्देश दिए जाएं ताकि देश की खाद्य श्रृंखला विषरहित हो सके और पर्यावरण एवं स्वास्थ्य पर होने वाले दुष्प्रभावों से मुक्ति मिल सके। इन जैविक उत्पादों के निर्यात की भी अनंत संभावनाएं हैं।

ये सब उपाय कर दिए जाएं तो भारत अपनी कृषि के सहारे विश्व की अग्रणी आर्थिक शक्ति बन सकता है।

*(सोमपाल शास्त्री भारत सरकार में पूर्व कृषि मंत्री एवं योजना आयोग के सदस्य रह चुके हैं)*

सभी फोटोः रॉयटर्स

# क्यों जरूरी है सरकार का सहारा?

दुनियाभर के किसान आखिर क्यों ज्यादा से ज्यादा सरकारी मदद की मांग कर रहे हैं

**रिचर्ड महापात्रा, राजू सजवान, शगुन कपिल**

सुखदीप सिंह उन हजारों किसानों में से एक हैं, जो सितंबर 2020 में संसद द्वारा पारित तीन कृषि कानूनों को निरस्त करने की मांग करते हुए दिल्ली की सीमाओं पर डटे हैं। किसानों को डर है कि ये कानून विनियमित मंडियों और न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) व्यवस्था को चरणबद्ध रूप से समाप्त कर देंगे। सुखदीप पंजाब में रहते हैं जिसने देश को खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में अहम भूमिका निभाई है।

पंजाब का किसान देश के सबसे अमीर किसानों में है। आमतौर पर एक औसत भारतीय किसान परिवार 77,124 रुपए हर साल कमाता है जबकि पंजाब के किसान परिवार की औसत कमाई 2,16,708 रुपए है। ऐसे में पंजाबी किसान देश के उन लाखों लघु व सीमांत किसानों के लिए प्रेरणास्रोत है जो 80 प्रतिशत से अधिक हैं और 2 हेक्टेयर से कम भूमि के मालिक हैं। पंजाब के किसानों की समृद्धि इस बात का भी प्रतीक है कि सरकारी सहायता कितनी मददगार हो सकती है। सुखदीप कहते हैं, “मैं केवल गेहूं और धान उगाता हूं, क्योंकि केवल ये दोनों फसलें ही न्यूनतम समर्थन मूल्य सरकार द्वारा खरीदी जाती हैं।”

पंजाब में करीब 95 फीसदी किसान सरकार की खरीद प्रणाली के तहत उपज बेचते हैं। सुनिश्चित खरीद की गारंटी के चलते पंजाब एकमात्र ऐसा राज्य है जहां फसलों के भंडारण की जरूरत नहीं पड़ती। खरीद की इस गारंटी पर आंच आने की आशंका ने किसानों के मन में डर पैदा कर दिया है। साठ के दशक में राज्य में प्रति हेक्टेयर गेहूं और धान की पैदावार महज 1.2 टन थी जो अब चार गुणा बढ़ गई है। अब उपज बढ़ाना बेहद मुश्किल है, वहीं दूसरी तरफ खेती की लागत में वृद्धि जारी है। आय बढ़ाने का एकमात्र तरीका न्यूनतम समर्थन मूल्य में वृद्धि और सब्सिडी है। यह सब्सिडी मुफ्त बिजली, सस्ते उर्वरक और इनपुट लागत कम करने के लिए मिलने वाली आर्थिक सहायता के रूप में मिलती है। अगर इस व्यवस्था को कमजोर या कम किया जाता है तो कृषि अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी।

देश के अन्य राज्यों के किसान भी एमएसपी और खरीद की ऐसी व्यवस्था की मांग कर रहे हैं। इसके लिए अधिकांश भारतीय किसानों को व्यापार में ढांचागत बदलाव करना होगा। इस बदलाव का मतलब है निजी बाजारों से सरकार द्वारा नियंत्रित और सुविधाजनक व्यवस्था में जाना। विडंबना यह है कि नए कानूनों का उद्देश्य किसानों के लिए निजी बाजार खोलना है। भारत के अधिकांश किसान पहले से ही खुले बाजारों में अपनी उपज बेच रहे हैं। यानी जिस लक्ष्य के लिए नए कानूनों को बनाया गया है, वे पहले से हासिल हैं। भारतीय खाद्य निगम के पुनर्गठन पर शांता कुमार समिति की 2015 में जारी रिपोर्ट में भी कहा गया है कि 94 फीसदी किसान निजी बाजारों पर आश्रित हैं। प्रदर्शन में शामिल होने दिल्ली पहुंचे उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के किसान उमेश कुमार कहते हैं, “मैं धान या गेहूं नहीं उगाता क्योंकि हमारे पास पानी नहीं है। मेरा दलहल और मोटा अनाज एमएसपी पर न के बराबर बिकता है।” उमेश का मामला सुखदीप से बिल्कुल अलग है। उमेश सूखाग्रस्त बुंदेलखंड क्षेत्र से आते हैं और उन्हें पता है कि धान या गेहूं की खेती से वह ज्यादा कमा सकते हैं। वह कहते हैं, “यह सुनिश्चित करने के लिए मुझे एमएसपी और पंजाब जैसी मंडी व्यवस्था चाहिए।”

अमेरिका स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवेनिया के सेंटर फॉर द एडवांस्ड स्टडी ऑफ इंडिया के सर्वेक्षण में पाया गया कि एमएसपी पर सरकारी एजेंसियों द्वारा खरीद के परिणामस्वरूप उत्पाद की कीमतों में वृद्धि हुई है। 2020 में जारी इस सर्वेक्षण में पंजाब, ओडिशा और बिहार समेत विभिन्न राज्यों के 10 हजार किसानों को शामिल किया गया था। सर्वेक्षण के मुताबिक, “सरकारी खरीद एजेंसियों को अपनी उपज बेचने पर बिहार में कीमतों में 16 प्रतिशत और ओडिशा में 17.5 प्रतिशत सुधार हुआ।”

सितंबर 2020 में संसद द्वारा तीनों कानूनों को पारित करने के बाद 19 राज्यों में करीब 20 विरोध प्रदर्शन हुए। इन प्रदर्शनों में मुख्य मांग यही थी कि एमएसपी पर सरकारी खरीद सुनिश्चित की जाए और आयात के जरिए आने वाले व स्थानीय बाजार को चोट पहुंचाने सस्ते कृषि उत्पादों से रक्षा की जाए। किसानों की मांग और ज्यादा बाजारों तक पहुंच की नहीं थी। यह भी सर्वविदित है कि ज्यादातर फसलें एमएसपी से नीचे बिक रही हैं। कृषि मंत्रालय के आंकड़ों से पता चलता है कि 14 सितंबर से 14 अक्टूबर 2020 के बीच 600 थोक बाजारों में 10 चुनिंदा फसलों का 68 प्रतिशत लेन-देन एमएसपी से कम कीमतों

**“किसानों को अपनी उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलना ही चाहिए। इस मूल्य ने उतार-चढ़ाव से भरे बाजार में मोलभाव करने में मेरी दशकों मदद की है”**

—**सुखदीप सिंह,** किसान, लुधियाना, पंजाब

# अनुदान में परिवर्तन

2018–19 में सेक्टर के टोटल सपोर्ट एस्टीमेट (टीएसई), प्रोड्यूसर सपोर्ट एस्टीमेट (पीएसई), कंज्यूमर सपोर्ट एस्टीमेट (सीएसई), जनरल सर्विस सपोर्ट एस्टीमेट (जीएसएसई) और मार्केट प्राइस सपोर्ट (एमपीएस) में आए बदलाव

**टीएसई में बदलाव का अंश, 2018 से 2019**

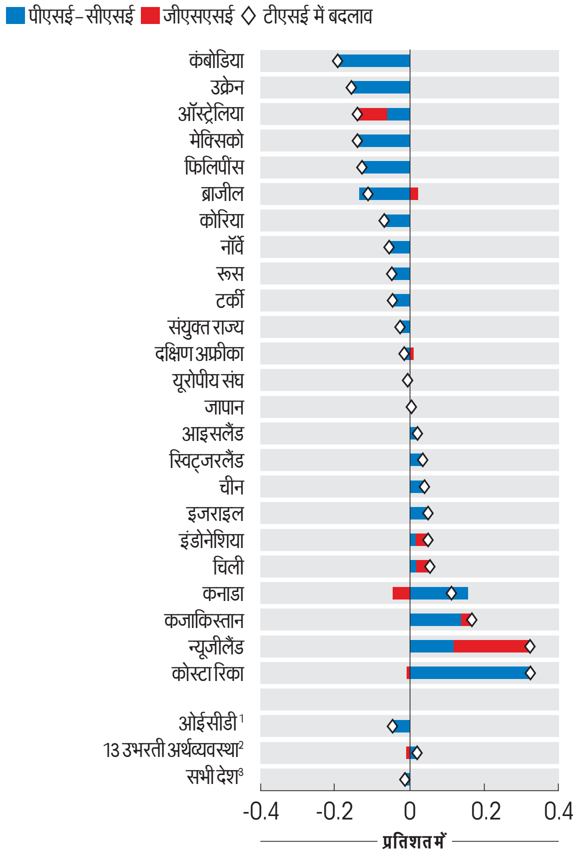


**पीएसई में बदलाव का अंश, 2018 से 2019**

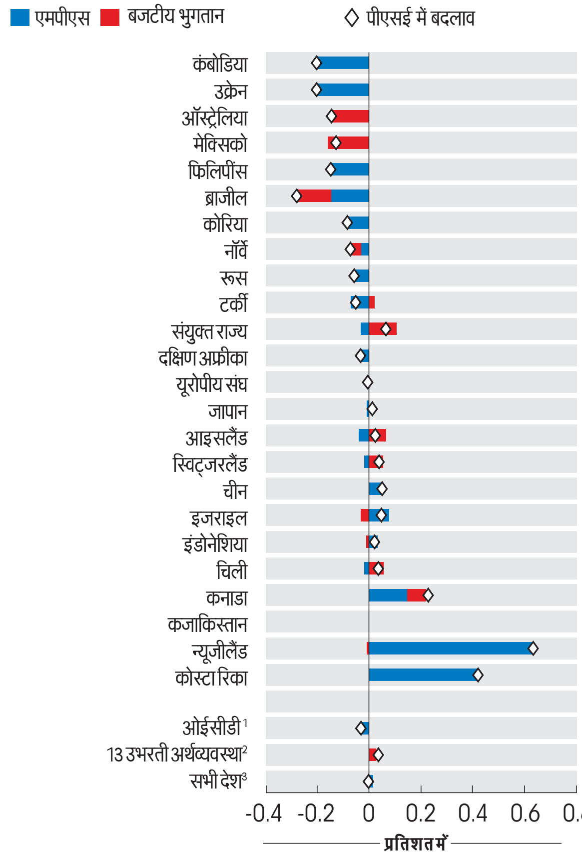


नोट : अर्जेंटीना, भारत और वियतनाम को नकारात्मक पीएसई अनुमानों के कारण नहीं दर्शाया गया है

1. ऑर्गनाइजेशन फॉर इकॉनोमिक को-ऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (ओईसीडी) गैर-ओईसीडी यूरोपीय संघ (ईयू) के सदस्य देशों को शामिल नहीं करता है

2. 13 उभरती अर्थव्यवस्थाओं में अर्जेंटीना, ब्राजील, चीन, कोलंबिया, कोस्टा रिका, भारत, इंडोनेशिया, कजाकिस्तान, फिलिपींस, रूसी संघ, दक्षिण अफ्रीका, यूक्रेन और वियतनाम शामिल हैं

3. सभी देशों में कुल ओईसीडी देश, गैर-ओईसीडी यूरोपीय संघ के सदस्य देश और उभरती अर्थव्यवस्थाएं शामिल हैं

इज़राइल के लिए सांख्यिकीय आंकड़े संबंधित इजराइली अधिकारियों द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं। ओईसीडी द्वारा इस तरह के डेटा का उपयोग अंतरराष्ट्रीय कानून की शर्तों के तहत वेस्ट बैंक में गोलान हाइट्स, पूर्वी यरुशलम और इजरायल की बस्तियों की स्थिति के पक्षपात के बिना है

स्रोत : प्रोड्यूसर एंड कंज्यूमर सपोर्ट एस्टीमेट, ओईसीडी कृषि सांख्यिकी (डेटाबेस), ओईसीडी (2020)

पर था। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस में स्कूल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज के सेंटर फॉर स्टडी ऑफ डेवलपिंग इकॉनोमीज में पढ़ा रहे आर रामाकुमार के अनुसार, "कोविड-19 ने सरकार की सहायता को दुनियाभर में अधिक जरूरी, महत्वपूर्ण और व्यापक बना दिया है। दुनियाभर में कृषि और खाद्य सुरक्षा प्राथमिकता रहेगी। इसके कारण कृषि को समर्थन में गिरावट या कमी की संभावना नहीं है।"

ऑर्गनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक कोऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (ओईसीडी) द्वारा जारी वार्षिक रिपोर्ट एग्रीकल्चरल पॉलिसी मॉनिटरिंग एंड इवेल्यूशन 2020 के अनुसार, 35 देशों और यूरोपीय संघ (ईयू) ने किसानों के लिए कोविड-19 का सामना करने के लिए वित्तीय सहायता योजनाओं की घोषणा की है। 54 देशों को कवर करने वाली इस रिपोर्ट में कहा गया है कि खाद्य और कृषि से संबंधित 400 से अधिक नीतिगत घोषणाएं हुई हैं।

## वैश्विक परिदृश्य

ओईसीडी की रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया में केवल 54 देश लगभग दो बिलियन डॉलर की सब्सिडी किसानों को दे रहे हैं। 2017-2019 में इन देशों द्वारा कृषि क्षेत्र में शुद्ध

हस्तांतरण 619 अरब डॉलर प्रतिवर्ष था। इसमें से 425 अरब डॉलर बजटीय सहायता थी। शेष राशि भारत की न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी बाजार सहायता के लिए थी। इसका करीब 536 अरब डॉलर का एक बड़ा हिस्सा किसानों को प्रत्यक्ष रूप से दिया गया। यह राशि किसान की सकल कृषि प्राप्तियों का 17.6 प्रतिशत थी। भारत और चीन जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं में किसानों को सालाना कुल 295 अरब डॉलर का समर्थन मिला और इसका 71 प्रतिशत हिस्सा सीधे उत्पादकों के पास गया। यह राशि एक किसान की सकल प्राप्ति का 8.5 प्रतिशत है। ओईसीडी के आंकड़ों के मुताबिक, जिन 20 सबसे बड़े उत्पादक देशों के सब्सिडी के आंकड़े उपलब्ध हैं, उनके कृषि क्षेत्र को 2015 और 2017 के बीच सालाना 620 बिलियन डॉलर से अधिक का भुगतान हुआ। इसमें करीब 475 बिलियन डॉलर का प्रत्यक्ष भुगतान हुआ। लगभग सभी देशों में कृषि का समर्थन एक ही तरीके से होता है। आइए नजर डालते हैं विभिन्न देशों में चल रही सहायता प्रणालियों और नीतिगत हस्तक्षेप परः

**यूरोपीय संघः** कृषि खाद्य उत्पादों का दुनिया का सबसे बड़ा आयातक और निर्यातक यूरोपीय संघ के पास कॉमन एग्रीकल्चर पॉलिसी (सीएपी) है। इसके तहत यह सदस्य देशों को सब्सिडी वितरित करता है। सकल कृषि प्राप्तियों के रूप में यह किसानों को मदद देता है। 2010 के बाद से किसानों को मिलने वाला सहयोग 19 प्रतिशत बना हुआ है। इसके कुल समर्थन का 89 प्रतिशत व्यक्तिगत उत्पादक को जाता है। यूरोपीय संघ की सब्सिडी नीति 2003 के बाद से उत्पादन से आय सहायता की ओर बढ़ रही है। 2014-18 में कृषि से परिवार की आय में इस प्रकार का समर्थन 57 प्रतिशत हिस्सा था। यूरोपीय संघ में सब्सिडी का मूल सिद्धांत छोटे किसानों का समर्थन करना और ऐसी कृषि को प्रोत्साहित करना है जो पर्यावरण के लिए कम नुकसानदायक है। उत्पादकों को लगभग 80 प्रतिशत भुगतान पर्यावरणीय मानदंडों को पूरा करने की शर्त पर प्रदान किया जाता है। इनमें फसलों की विविधता सुनिश्चित करने और 2014 के स्तर पर स्थायी घास के मैदानों को सुनिश्चित करने हेतु एक साथ कम से दो से तीन विभिन्न फसलों को लेना शामिल है। 2020 के बाद शर्तों में बदलाव देखने को मिल सकते हैं। लेकिन किसानों को मिलने वाला समर्थन पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं के भुगतान के रूप में अधिक होगा।

**अमेरिकाः** यह किसानों को कृषि कानूनों के जरिए मदद देता है। इन कानूनों की शुरुआत 1933 की महामंदी के समय हुई थी। इनका मकसद था महामंदी के फलस्वरूप कीमतों में आई गिरावट से किसानों को बचाना। कांग्रेस आमतौर पर इन कानूनों की समीक्षा करती रहती है और बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार सुधार करती है। अमेरिका कृषि क्षेत्र को इसलिए समर्थन करता है ताकि खाद्य मुद्रास्फीति को नियंत्रित रखा जा सके, खेती का जोखिम कम किया जा सके और अमेरिका के गरीब खाद्य उत्पाद खरीदने में सक्षम हो सकें। मौजूदा कानून के तहत कृषि को अधिकांश मदद पूरक पोषण सहायता कार्यक्रम (जिसे पहले फूड स्टैंप कार्यक्रम कहा जाता था) और महिलाओं, शिशुओं व बच्चों के लिए विशेष पूरक पोषण कार्यक्रम के लिए प्रतिबद्ध है। इसी कारण अमेरिका के किसानों की फसलें बीमा से कवर होती हैं। सरकार बीमा से फसल की 70 प्रतिशत लागत कवर करती है। अनुमान के मुताबिक, 2020 में अमेरिका किसानों को 46 बिलियन डॉलर की सब्सिडी दे रहा था। यह सब्सिडी कितनी बड़ी है, इसे इस तथ्य से समझा जा सकता है कि 2020 में कृषि से प्राप्त हुई आमदनी में इसका योगदान 40 प्रतिशत था। अगर किसानों को यह सब्सिडी न मिले तो कृषि से होने वाली आमदनी ऋणात्मक हो जाएगी।

**चीनः** इसमें कोई संदेह नहीं है कि चीन की सब्सिडी योजनाएं काफी खर्चीली हैं। इनका एकमात्र मकसद है बढ़ी आबादी को सस्ता भोजन उपलब्ध कराना। 2004 में चीन नेट फूड इम्पोर्टर बन गया। तब से पूरी कृषि सहायता प्रणाली का मकसद स्थानीय उत्पादन और स्थानीय आय बढ़ाने का रहा है। चीन ने 2006 में कृषि पर लगभग सभी करों को समाप्त कर एक व्यापक कृषि सहायता कार्यक्रम शुरू किया। इसके तहत खेती की जमीन के आधार पर किसानों को सीधा भुगतान शुरू हुआ। उर्वरक और ईंधन जैसी इनपुट लागतों पर उच्च सब्सिडी का भी प्रत्यक्ष भुगतान किया गया। चीन उन्नत बीजों के लिए भी नकद सहायता देता है। भारत की तरह चीन में भी चावल और गेहूं का न्यूनतम समर्थन मूल्य है। इसके चलते 2005-15 के

**पृष्ठ 30 जारी**

“मुझे भी पंजाब की तरह न्यूनतम समर्थन मूल्य और खरीद तंत्र की जरूरत है। इससे ही मेरी फसल की बिक्री और आय में वृद्धि सुनिश्चित हो सकती है”

—**उमेश,** किसान, बांदा, उत्तर प्रदेश

# बदलती प्रवृत्ति

दुनियाभर के देशों में प्रोड्यूसर सपोर्ट एस्टीमेट (पीएसई) और मार्केट प्राइस सपोर्ट (एमपीएस) का वितरण

**2000-2002**

बजटीय भुगतान एवं सकारात्मक एमपीएस | नकारात्मक एमपीएस

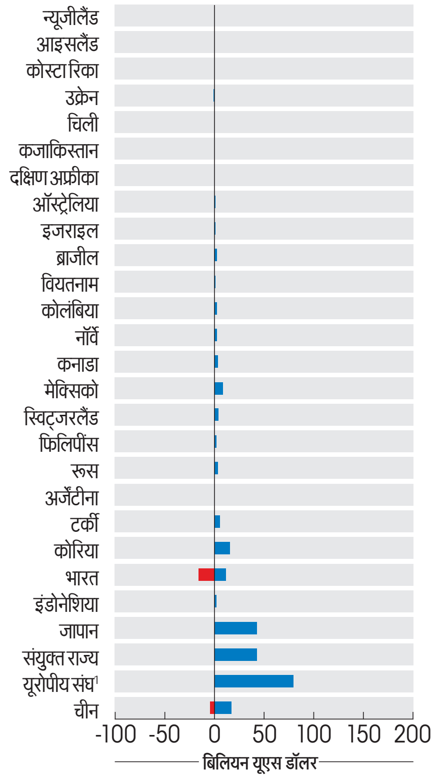


**2017-2019**

बजटीय भुगतान एवं सकारात्मक एमपीएस | नकारात्मक एमपीएस

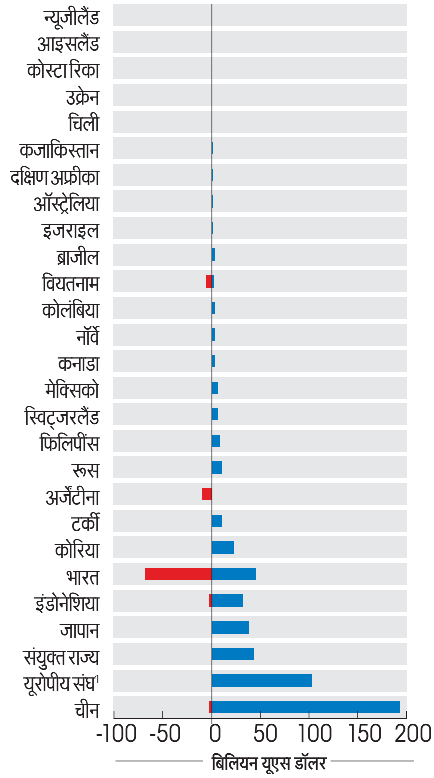


**2000-2002**

बजटीय भुगतान एवं सकारात्मक एमपीएस | नकारात्मक एमपीएस

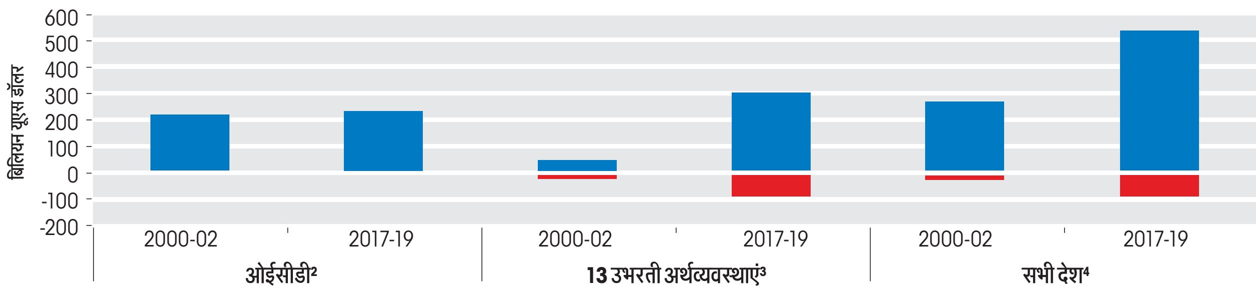


नोट: देशों को 2017-19 में पीएसई लेवल के अनुसार रैंक दी गई है

1. 2000-02 के लिए ईयू15 और 2017-19 के लिए ईयू28

2. ओईसीडी गैर-ओईसीडी यूरोपीय संघ के सदस्य देशों को शामिल नहीं करता। चेक गणराज्य, एस्टोनिया, हंगरी, पोलैंड, स्लोवाक गणराज्य और स्लोवेनिया दोनों अवधियों के लिए और यूरोपीय संघ में 2017-19 के लिए कुल ओईसीडी में शामिल हैं। केवल लातविया और लिथुआनिया को ओईसीडी और यूरोपीय संघ में 2017-19 में शामिल किया गया है

3. 13 उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अर्जेंटीना, ब्राजील, चीन, कोलंबिया, कोस्टा रिका, भारत, इंडोनेशिया, कजाकिस्तान, फिलिपींस, रूसी संघ, दक्षिण अफ्रीका, यूक्रेन और वियतनाम शामिल हैं

4. सभी देशों में कुल मिलाकर सभी ओईसीडी देश, गैर-ओईसीडी यूरोपीय संघ के सदस्य देश और उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाएं शामिल हैं

स्रोत: प्रोड्यूसर एंड कंज्यूमर सपोर्ट एस्टीमेट, ओईसीडी कृषि सांख्यिकी (डेटाबेस), ओईसीडी (2020)

बीच चावल, गेहूं और मक्का के उत्पादन में 40 फीसदी की बढ़ोतरी हुई।

**भारत :** सरकार का सहयोग उत्पादन, प्रसंस्करण और वितरण तक फैला है। वर्तमान में नकद सहायता योजना भी शुरू की गई है। 2020-21 के केंद्रीय बजट में प्रत्यक्ष आय हस्तांतरण योजना पीएम-किसान के लिए 7,50,000 करोड़ (10.6 बिलियन डॉलर) आवंटित किए गए। भारतीय सांख्यिकी संस्थान के मार्च 2019 के अध्ययन के अनुसार, 2017-18 में सब्सिडी का कुल खर्च (केंद्र और राज्य सरकार) करीब 2,35,500 करोड़ था। इसमें से 1,20,500 करोड़ केंद्र सरकार से आए जबकि बाकी राज्यों द्वारा वहन किया गया। 2014 में बोए गए खेत में प्रति हेक्टेयर इनपुट सब्सिडी 7,750 रुपए थी जबकि कीमत सब्सिडी 1,050 रुपए थी। 2017 में कृषि सब्सिडी व्यय औसत कृषि आय का 21 प्रतिशत थी।

ओईसीडी के ताजा आकलन में कहा गया है कि भारत उन चंद देशों में शामिल है जिसने उपभोक्ताओं को खुश रखने के लिए किसानों को दंडित किया है। किसी सरकार के बजटीय और अन्य सब्सिडी का अंतरराष्ट्रीय पैमाना प्रोड्यूसर सपोर्ट एस्टीमेट (पीएसई) है। वैश्विक कृषि सहयोग को ट्रैक करने के लिए इसे ओईसीडी द्वारा विकसित किया है। यह अनुमान किसानों को मिलने वाले सहयोग का पता लगाता है। ओईसीडी का आकलन है कि भारतीय किसानों के लिए पीएसई नकारात्मक 5.7 प्रतिशत है अथवा सरकार ने वास्तव में किसानों पर कर लगाया है *(देखें, अनुदान में परिवर्तन, पेज 25)*। भारतीय किसानों ने 2019 में इस तरह 23 बिलियन डॉलर गंवा दिए। इसके उलट नॉर्वे का पीएसई 60 फीसदी है। भारत का नकारात्मक पीएसई सस्ता भोजन सुनिश्चित करता है। सरकारी सहायता और नीतिगत हस्तक्षेप से थोक मूल्य कम रहता है। सस्ती दरों पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से खाद्य मुद्रास्फीति नियंत्रित रहती है। ओईसीडी के मुताबिक, वर्ष 2017-19 में उपभोक्ताओं के लिए लाभ 80 बिलियन डॉलर था। यह नीति अधिकांश देशों से उलट है। ये देश कृषि उपज के मूल्य को वैश्विक स्तर से अधिक रखते हैं और सरकार उपभोक्ताओं को मदद देकर इसकी भरपाई करती है। ऐसा करने से किसानों को अच्छा लाभ होता है। पिछले दो दशकों में उत्पादकों को सरकार का समर्थन नकारात्मक बना हुआ है। वहीं, उर्वरक और खाद्य सब्सिडी के लिए आवंटन 2018 और 2019 के बीच बढ़ा है। हालांकि वित्त वर्ष 2020-21 के लिए यह क्रमशः 10.8 और 37 प्रतिशत कम था।

**ओईसीडी के ताजा आकलन में कहा गया है कि भारत उन चंद देशों में शामिल है जिसने उपभोक्ताओं को खुश रखने के लिए किसानों को दंडित किया है**

**न्यूजीलैंड :** जब न्यूजीलैंड ने 1985 में किसानों को दी जाने वाली सभी प्रकार की सब्सिडी खत्म कर दी तब इसका विरोध बढ़ गया। लेकिन सरकार टस से मस नहीं हुई। इससे न्यूजीलैंड यह समझने के लिए जीता जागता उदाहरण बन किया कि बिना सरकारी समर्थन कृषि को कैसे जीवित रखा जा सकता है। इसकी अर्थव्यवस्था सर्वाधिक वैश्विक मानी जाती है और इसमें इसके खाद्य निर्यात का अहम योगदान है। इसके सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 7 प्रतिशत है। यह देश मुख्य रूप से कृषि उत्पाद जैसे मीट या डेरी उत्पादों का निर्यात करता है। भेड़ के मांस और डेरी उत्पादों का यह दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक है। न्यूजीलैंड के 36 साल पहले लिए गए फैसले ने देश में एक नए तरह के सरकारी समर्थन की शुरुआत भी की। सभी प्रकार की सब्सिडी और सहायता कृषि अनुसंधान और विकास के लिए दी जाने लगी। अन्य सभी देशों की तरह न्यूजीलैंड का भी यही उद्देश्य था कि वैश्विक बाजारों में स्थानीय कृषि उत्पादों को प्रतिस्पर्धी बनाया जाए। अनुसंधान और नवाचार कोष मुख्य रूप से देश के स्थानीय रूप से संपन्न कृषि गतिविधि की उत्पादकता बढ़ाने पर केंद्रित थे, जैसे पशुधन और इसके उत्पाद। देश ने गेहूं जैसी वैश्विक स्तर पर चर्चित कृषि उत्पाद पर ध्यान नहीं दिया। 1984 के बाद से इसने भेड़ों की संख्या को आधा कर दिया लेकिन अब भी उसी स्तर पर उत्पादन बरकरार रखा है।

न्यूजीलैंड में सरकार का कृषि समर्थन किसानों की सकल प्राप्तियों का सिर्फ 1 प्रतिशत है, जो ओईसीडी देशों में न्यूनतम है। हालांकि कृषि समर्थन पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है। यह फसलों के रोग नियंत्रण पर बड़ी राशि खर्च करता है और प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुए नुकसान की भरपाई के लिए किसानों को प्रत्यक्ष भुगतान करता है। यहां किसानों को कृषि से संबंधित सभी जानकारियां प्रदान करने के लिए विशाल नेटवर्क है। यहां की सरकार सामुदायिक स्तर पर ऑफ-फार्म सिंचाई परियोजनाओं का भी समर्थन करती है। न्यूजीलैंड भले ही डब्ल्यूटीओ में दूसरे देशों की कृषि सब्सिडी का मुखर विरोध करता है। लेकिन इसने मुक्त व्यापार से संबंधित सर्वाधित द्विपक्षीय समझौते किए हैं। इन्हीं समझौतों के कारण इसके कुल निर्यात में कृषि उत्पादों की हिस्सेदारी 66 प्रतिशत है।

न्यूजीलैंड ने 2019 में क्लाइमेट चेंज रेस्पॉन्स (शून्य कार्बन) अमेंडमेंट एक्ट को अपनाया ताकि वह वैश्विक तापमान को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के लक्ष्य यानी पेरिस समझौते मानने के लिए कानूनी रूप से बाध्य हो सके। यह कानून देश को मीथेन के अलावा सभी

दिल्ली की सीमा पर कृषि कानूनों का विरोध कर रहे किसानों को डर है कि नए कानून न्यूनतम समर्थन मूल्य व्यवस्था को खत्म कर सकते हैं

ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन 2050 तक शून्य करने को कहता है। कानून बायोजेनिक मीथेन (जैविक स्रोतों से उत्पन्न) के उत्सर्जन को 2050 तक 2017 के स्तर से 24-47 प्रतिशत तक कम और 2030 तक 2017 के स्तर से 10 प्रतिशत से कम करने को कहता है। यह सभी किसानों को कृषि विशिष्ट उत्सर्जन कटौती की योजना बनाने को भी कहता है। यदि वे अनिवार्य रूप से उत्सर्जन को कम नहीं करते हैं, तो उन्हें 2022 तक अतिरिक्त करों की अदायनी करनी होगी। पशुधन क्षेत्र ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का प्रमुख स्रोत है, इसलिए डेरी किसान समर्थन की मांग कर रहे हैं। सरकार ने भी किसानों को समर्थन देने के लिए 229 बिलियन डॉलर का बजट आवंटित किया है।

## बिना समर्थन खेती असंभव

रामाकुमार कहते हैं, "बिना सरकारी मदद के भोजन नहीं उगाया जा सकता। अगर विकसित या ओईसीडी देशों में सब्सिडी हटा दी गई तो उनका निर्यात अब अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धी नहीं होगा।" अमेरिका में चीनी और मक्का जैसी कृषि उपज के उत्पादन के मूल्य के 55 प्रतिशत के बराबर सरकारी सहायता है। इसी प्रकार यूरोपीय संघ ने 2000 तक कैप के तहत सब्सिडी का नाम बदलकर "ग्रामीण विकास सहायता योजना" कर दिया, जिसका ग्रामीण यूरोप केंद्र बिंदु बन गया है। इस एकल भुगतान योजना के तहत किसानों को भूमि के आकार और प्रकार के आधार पर सब्सिडी मिलती है। इसके अलावा खेत में एक पेड़ की संख्या के आधार पर ग्रीन पेमेंट की व्यवस्था है। यूरोपीय संघ ने युवा किसान को भी भुगतान शुरू किया है।

वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के तहत संचालित सेंटर फॉर डब्ल्यूटीओ स्टडीज में एसोसिएट प्रोफेसर सचिन कुमार शर्मा कहते हैं, "सरकारी सहायता की जरूरत है क्योंकि कई बार अच्छा उत्पादन होने पर भी बाजार की स्थिति खराब हो जाती है। कृषि में बाजार की विफलता अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक है क्योंकि यह क्षेत्र मौसम की स्थिति जैसे कई कारकों पर निर्भर करता है। कोई भी देश कृषि क्षेत्र को बाजार के हवाले नहीं कर सकता। इसका मतलब यह नहीं है कि बाजार की कोई भूमिका नहीं है। एक-दूसरे के अस्तित्व के लिए दोनों की जरूरत है।

आईआईएम-अहमदाबाद के सेंटर फॉर मैनेजमेंट इन एग्रीकल्चर के प्रोफेसर सुखपाल सिंह कहते हैं, "मुद्दा यह नहीं है कि सरकार को सब खरीदना है। बाजार में हस्तक्षेप के सिद्धांत से पता चलता है कि यदि आप 15-20 प्रतिशत बाजार को नियंत्रित कर सकते हैं, तो अन्य पक्षों पर असर पड़ेगा। इसे मार्केट सैल्यूटरी इफेक्ट कहा जाता है और इसकी जरूरत है। अपने सभी संसाधनों को गेहूं और धान में लगाने की जरूरत नहीं है। विविध फसलों में भी निवेश करना चाहिए और किसानों को न्यूनतम लाभकारी स्तर तक लाने के लिए उसे खरीदना चाहिए।

# किसानों को हक देने का समय

किसान के लिए अनुकूल एक्जिट पॉलिसी बनाना बेहतर विचार होगा, जहां उनके पास यह अधिकार हो कि वह मर्जी से या तो कृषि कार्य करता रहे या अपनी जमीन बेच दे

**शरद जोशी**

**भारतीय कृषि** को इसकी मौजूदा दुर्दशा से बाहर निकालने के लिए कृषि विपणन और कृषि विस्तार (वैज्ञानिक कृषि ज्ञान का प्रसार) व्यवस्था में सुधार की तत्काल जरूरत है। साथ ही जमीन को टुकड़े होने से बचाने और किसानों के अनुकूल एक्जिट पॉलिसी भी बनाने की जरूरत है। 1929 से भारतीय कृषि की एक ही वास्तविक समस्या रही है। ये किसानों के लिए शुरू से गैर-लाभकारी व्यवसाय रहा है। अमेरिकन सिविल वार ने भारतीय कॉटन को विश्व बाजार से गायब कर दिया। तभी से भारतीय कृषि हाशिये पर धकेल दी गई। महामंदी के बाद द्वितीय विश्व युद्ध ने कृषि उत्पादों की कीमत कम कर दी और साथ ही अन्न का अभाव भी पैदा हुआ। अंग्रेजों ने भारत से सस्ता अनाज खरीद कर वापस भारत को ही महंगा उत्पाद (मैन्युफैक्चर्ड) भेजने की नीति अपना ली। भारतीय उद्योग भी इसी नीति का फायदा उठाने लगे। आजादी अपने साथ विभाजन की त्रासदी लेकर आई। ज्यादा अन्न उपजाने वाले कुछ राज्य पाकिस्तान के हिस्से में चले गए और वहां से आए शरणार्थियों की वजह से अन्न की कमी और अधिक बढ़ गई। नौकरशाही पर सरकार की निर्भरता और समाजवाद की आरंभिक सोच ने इंस्पेक्टर राज को जन्म दिया, जिसे राजनीतिक लोकप्रियता के तहत "कम लागत वाली अर्थव्यवस्था" (लो कॉस्ट इकॉनमी) कहा गया। इस नीति में किसानों के खिलाफ अंतर्निर्मित पक्षपात छुपा हुआ था। समाज के समाजवादी पैटर्न ने चीजों को और खराब ही किया, क्योंकि औद्योगीकरण के लिए सस्ता कच्चा माल और श्रम की जरूरत थी।

1960 की हरित क्रांति ने अन्न की कमी को तो खत्म कर दिया लेकिन इसने खेती की लागत बढ़ा दी। इससे खाद, कीटनाशक, बिजली के दाम महंगे होते चले गए। मार्केटिंग सिस्टम और बुनियादी ढांचे की कमजोरी ने कृषि को एक बार फिर नुकसान का सौदा बना दिया। कृषि मूल्य आयोग (एपीसी) की स्थापना और न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की शुरुआत से 1965-1970 के बीच चीजें सुधरनी शुरू हुईं। इसके बाद जब एपीसी की जगह कमिशन फॉर एग्रीकल्चरल कॉस्ट्स एंड प्राइस (सीएसीपी) बना, तब एक ऐसा समय भी आया, जब कमिशन द्वारा सुझाए गए एमएसपी को इरादतन कम कर दिया जाता था और इस तरह किसानों को दिया जाने वाला न्यूनतम मूल्य ही उच्चतम मूल्य बन गया। व्यापार और निर्यात पर प्रतिबंध, भंडारण की अपर्याप्त व्यवस्था, प्रोसेसिंग, यातायात की समस्या ने आगे भारतीय कृषि को और अधिक नुकसानदायक स्थिति में पहुंचा दिया।

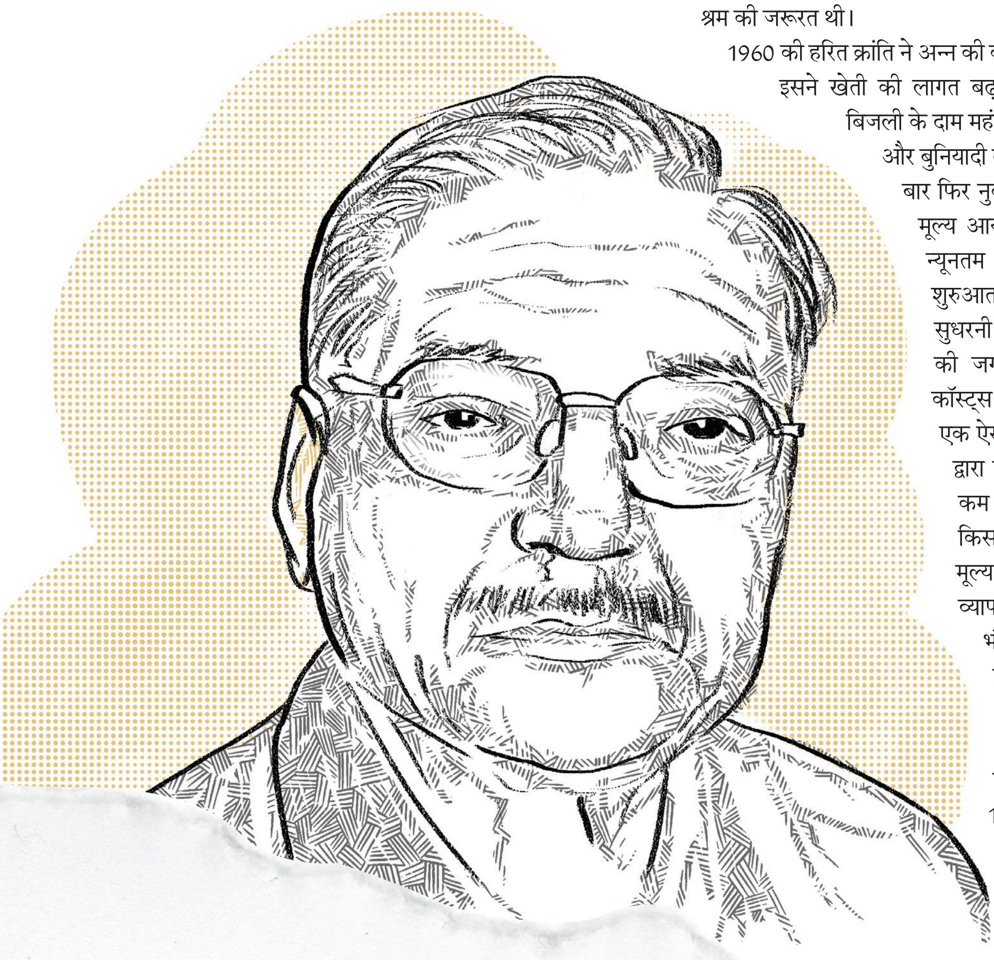

इलस्ट्रेशन : रितिका बोहरा / सीएसई

1990 का आर्थिक सुधार उद्योग और वित्त जगत तक ही सीमित रहा। कृषि क्षेत्र को इस सुधार

प्रक्रिया से दूर ही रखा गया। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के शासनकाल में मार्केटिंग के मोर्चे पर कुछ सुधार के काम हुए। जब सुधार के दूसरे चरण का समय आया, तब एक बार फिर यूपीए सरकार के समय कृषि को राज्य के अधीन विषय बताकर छोड़ दिया गया। अब दूसरी हरित क्रांति की भी बात हो रही है। आम लोग भी समझ रहे हैं कि कृषि विपणन व्यवस्था के मौजूदा हालात को सुधारने की आवश्यकता है। किसानों द्वारा आत्महत्या के बाद इन सुधारों की जरूरत और तीव्रता से महसूस की गई। दुर्भाग्य से जब कांग्रेस पार्टी की सोच में बदलाव आया, तब उसके लेफ्ट के सहयोगी उन पर हावी रहे। नतीजतन, यूपीए सरकार ऐसे बदलाव लाती रही, जो अप्रासंगिक और अनुचित थे।

जीडीपी विकास दर अब दोहरे अंक में प्रवेश करने जा रही है, लेकिन कृषि विकास दर अब भी 3 फीसदी की रेखा पार करने के लिए जद्दोजहद कर रही है। नीति-निर्माता कृषि क्षेत्र के 4 फीसदी विकास दर सुनिश्चित करने पर जोर दे रहे हैं। जाहिर है, कृषि के उच्चतम विकास दर का स्वागत किया जाना चाहिए। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि 4 फीसदी का लक्ष्य जीडीपी विकास दर और कृषि उत्पाद के बीच सह-संबंध का अध्ययन किए बिना तय किया गया था। विशेषज्ञ 4 फीसदी लक्ष्य की बात तब भी कर रहे थे, जब जीडीपी महज 6 फीसदी थी और तब भी 4 फीसदी की ही बात कर रहे हैं, जब यह 9 फीसदी से ऊपर चली गई है।

**आज किसानों को खाद या भोजन पर दी जाने वाली सब्सिडी का मजाक बनाया जाता है। यह रुकना चाहिए। सीधे किसानों तक सब्सिडी का सही लाभ पहुंचाना कोई बहुत कठिन काम नहीं है**

ग्रामीण एवं कृषि व्यापार के सहकारी स्वरूप को लेकर फिर से विचार किए जाने की जरूरत है। सहकारिता का मॉडल फेल हो चुका है, सिवाए कुछ अपवादों के जहां नेतृत्व बहुत मजबूत था या जहां एकाधिकार वाली स्थिति थी। हरित-क्रांति से पूर्व के दिनों में अन्न की कमी एक समस्या थी और आज भी है, जब भारत कई खाद्यानों का मुख्य उत्पादक देश बन चुका है।

खाद्य सुरक्षा की बात को सही साबित करने के क्रम में "खाद्य सुरक्षा" की परिभाषा को ही विस्तृत बनाया जा रहा है। खाद्य सुरक्षा का अर्थ सिर्फ खाद्यान की भौतिक उपलब्धता भर नहीं है। इसका अर्थ यह भी है कि इसे पाने के लिए पर्याप्त क्रय शक्ति का होना, पानी की उपलब्धता होना, पर्याप्त साक्षरता होना और महिला सशक्तिकरण का होना। "खाद्य सुरक्षा" के दायरे को विस्तृत बनाने में एनजीओ का अपना कुछ छुपा हित हो सकता है। सरकार फूड सिक्योरिटी मिशन बनाते समय एक लोकप्रिय दबाव से झुकी रहती है। ये मिशन "अधिक अन्न उपजाओ" की रणनीति को अपना रहा है। ये वैसी ही रणनीति है, जो 1960 से पूर्व की अवधि में फेल हो चुकी है। इसमें बुनियादी ढांचे और तकनीक पर जोर है, जबकि किसानों को आर्थिक लाभ देने पर तकरीबन नगण्य ध्यान दिया गया है। वाम अर्थशास्त्रियों के विचार ने भी कृषि बहस को बहुत अधिक प्रभावित किया है, जिसमें वे सीमांत और छोटे किसानों की स्थिति पर बहुत अधिक जोर देते हैं। तथ्य यह है कि किसी एक किसान के पास जमीन का आकार आर्थिक स्थिति के मुकाबले परिवार की एकजुटता पर निर्भर करता है। छोटी जोत वाले किसान आमतौर पर ऐसे परिवारों से आते हैं, जहां भाइयों के बीच हर पीढ़ी के दौरान जमीन का बंटवारा होता रहा है। गौरतलब है कि ये अर्थशास्त्री ऑपरेशनल कंसोलिडेशन (चकबन्दी) का रास्ता नहीं सुझाते, बल्कि आगे और अधिक बंटवारे और भूमि सुधार की सिफारिश करते हैं। यह बंद होना चाहिए। इसी तरह ग्रामीण परिदृश्य में महाजनों के खिलाफ भी एक पूर्वाग्रह की स्थिति है। सत्य यही है कि औपचारिक ऋण संगठन पर जोर देने के बाद भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक रूप से ऋण देने वाले महाजनों ने कृषि ऋण क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनका ब्याज दर या कर्ज वसूलने के तरीके भी उतने बुरे नहीं, जितने माइक्रो फाइनैंस संगठनों के होते हैं। बांग्लादेश मॉडल की नकल के बजाए बेहतर होगा कि हम महाजनों की व्यवस्था को ही औपचारिक ऋण संस्थान के रूप में मान्यता दें और "यूजयूरियस लोन एक्ट" (ज्यादा ब्याज वसूलने से संबंधित कानून) की समीक्षा करें, ताकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था से इस घृणित प्रथा को खत्म किया जा सके।

कृषि क्षेत्र से संबंधित कई ऐसे मुद्दे हैं, जो आजादी के दिनों से लेकर आज तक प्रासंगिक बने हुए हैं। फिर भी, कुछ ऐसे मुद्दों की सूची बनाना लाभकारी होगा, जिसका सामना आने वाले दशकों में भारतीय कृषि क्षेत्र को करना होगा। ज्यादातर किसान कृषि कार्य में इसलिए शामिल हैं, क्योंकि उनके माता-पिता उनके लिए जमीन छोड़ कर गए हैं। सर्वे के अनुसार, अगर विकल्प दिया जाए तो ज्यादातर किसान आज ही किसानी का काम त्याग देंगे। दूसरी ओर जिनके पास पैसा है, प्रबन्धकीय कौशल है और तकनीक से परिचित है, वे इस क्षेत्र में आने को लेकर अनिच्छुक हैं। कृषि भूमि घट रही है और बाजार जमीन के बदले आकर्षक पैसा देने के लिए तैयार है। ऐसी स्थिति में स्पेशल इकोनोमिक जोन के लिए जमीन का आवश्यक अधिग्रहण अनुचित होगा।

किसानों के अनुकूल एक एक्जिट पॉलिसी (बाहर निकलने का रास्ता) बनाना बेहतर विचार होगा, जहां किसानों के पास यह अधिकार हो कि वह अपनी मर्जी से या तो कृषि कार्य करता रहे या अपनी जमीन बेच दे। वैश्वीकरण की प्रक्रिया का तब तक कोई खास अर्थ नहीं होगा, जब तक कि उत्पादन के कारकों का इंटर-सेक्टोरल ट्रांसफर न हो।

भारत वैश्विक तापमान जैसी नई आपदा को झेलने के लिए तैयार नहीं है। 1960 से किए जा रहे बेहतर प्रयास इस आपदा की वजह से धूल में मिल जाएंगे। अधिक उपज देने वाले बीज, जो हरित क्रांति के दौरान अच्छा मुनाफा देते रहे हैं, शायद तब ऐसी भूमिका न निभा पाएं, जब अचानक तापमान और मौसम की स्थिति में तेजी से बदलाव आने लगे।

बजट भाषण में वित्तमंत्री स्वीकार कर चुके हैं कि कृषि विस्तार और इनपुट सब्सिडी की व्यवस्था चरमरा चुकी है। कृषि विस्तार व्यवस्था को वेतनभोगी सलाहकार कर्मचारी के बजाए कमिशन आधारित सलाहकार में बदले जाने की जरूरत है। आज किसानों को खाद या भोजन पर दी जाने वाली सब्सिडी का मजाक बनाया जाता है। यह रुकना चाहिए। सीधे किसानों तक सब्सिडी का सही लाभ पहुंचाना कोई बहुत कठिन काम नहीं है, बशर्ते ऐसा करने की राजनैतिक इच्छाशक्ति हो।

*(लेखक शेतकारी संगठन के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे हैं। लेख अकैडमिक फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित किताब डाउन टू अर्थ से साभार)*

# बीज के पेंच में फंसा किसान

सरकार के आंकड़े बता रहे हैं कि बीज की उपलब्धता मांग से अधिक है लेकिन इसके बावजूद किसानों को उनकी जरूरत के अनुसार बीज उपलब्ध नहीं हो रहा है

**अनिल अश्विनी शर्मा**

फोटो : मीता अहलावत / सीएसई

**कोरोना** वायरस के चलते केन्द्र सरकार ने मार्च में पूरे देश में लॉकडाउन की घोषणा की थी। लॉकडाउन के बाद मजदूर लौटकर अपने गांवों में आए और खेती के काम में लग गए, लेकिन लॉकडाउन के चलते साल 2020 के खरीफ सीजन के लिए बीज मिलने में काफी समस्या आई। ट्रकों के एक से दूसरे राज्य में आने-जाने पर कड़े प्रतिबंधों के चलते लाखों किसानों को बीज खरीदने में काफी जद्दोजहद करनी पड़ी। 2020-21 के खरीफ सीजन में देश के 20 फीसदी किसानों को बीज और एग्रोकेमिकल्स की आपूर्ति नहीं हो पाई। ये हालात तब थे जब बीज, फर्टिलाइजर, कीटनाशक सहित कई तरह के एग्रोकेमिकल आवश्यक वस्तुओं की फेहरिस्त में शामिल थे। बीजों की उपलब्धता घटने से खरीफ की बुआई प्रभावित हुई। हालांकि आंकड़े कहते हैं कि मांग की तुलना में बीजों की उपलब्धता ज्यादा ही थी, लेकिन सही समय पर बीज किसानों तक नहीं पहुंच पाए। बीज और रोपण सामग्री पर होने वाला खर्च भी 2020-21 में घटा है।

> **कोरोना वायरस के कारण देशभर में बीज बाजार और किसानों को काफी नुकसान उठाना पड़ा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां उन्हें निगलने के लिए तैयार बैठी हैं**

सीडनेट इंडिया पोर्टल के आंकड़े बताते हैं कि 2020-21 में बीज और उसे रोपने की सामग्री के लिए सरकार ने सिर्फ 37.42 करोड़ रुपए ही जारी किए हैं। जबकि 2019-20 में चारों तिमाहियों को मिलाकर 191.78 करोड़ रुपए रिलीज किए गए थे। 2020-21 की पहली, तीसरी और चौथी तिमाही में अब तक कोई भी राशि रिलीज नहीं की गई है। 2017-18 में सरकार ने 200.82 करोड़ रुपए बीज और रोपण सामग्री के लिए रिलीज किए थे। 2016-17 में 168.78 और 2015-15 में 145.23 करोड़ रुपए सरकार ने जारी किए थे। *सीड इंड्रस्टी इन इंडियाः मार्केट ट्रेंड्स, स्ट्रक्चर, ग्रोथ, की-प्लेयर्स और फोरकास्ट 2021-2026* की रिपोर्ट के अनुसार 2020 तक भारत का बीज बाजार 4.9 बिलियन डॉलर का हो गया है।

भारतीय कृषि एवं खाद्य परिषद की सीड इंड्रस्ट्री सिनेरियो-2019 की रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया का बीज व्यापार 2018 में 59.71 बिलियन अमेरिकी डॉलर का है। 2011-18 के बीच ये 7 प्रतिशत रफ्तार से बढ़ा है। सरकार के ही आंकड़े बता रहे हैं कि देश में बीज की उपलब्धता जरूरत के मुताबिक ज्यादा ही है। सीडनेट इंडिया पोर्टल पर दिए आंकड़ों के अनुसार इस वित्तीय वर्ष में देश को 443.14 लाख क्विंटल बीजों की जरूरत थी जबकि उपलब्धता 483.67 लाख क्विंटल की है। इसी तरह 2019-20 में जरूरत 387.33 लाख क्विंटल की थी और उपलब्धता 431 लाख क्विंटल रही। 2018-19 में मांग 353.52 और उपलब्धता 398.87 लाख क्विंटल, 2017-18 में मांग 371.39 और उपलब्धता 419.41 लाख क्विंटल रही। आंकड़ों की तुलना में सामने आ रहा है कि देश में बीज की जरूरत लगातार बढ़ रही है और उपलब्धता भी मांग की तुलना में ज्यादा है। विशेषज्ञों के अनुसार 2020-21 में बढ़ी मांग के पीछे कोरोनाकाल में गांव लौटे लोगों का खेती में वापस काम करना मुख्य कारण है।

इन्हीं आंकड़ों को फसल चक्र के हिसाब से देखें तो 2020-21 में खरीफ सीजन में 150.51 लाख क्विंटल बीज की जरूरत थी और उपलब्धता 153.71 लाख क्विंटल रही। इसी तरह 2019-20 के खरीफ सीजन में बीज की मांग 140.39 लाख क्विंटल थी और मांग 152.24 लाख क्विंटल थी। इस साल के रबी में बीज की मांग 292.63 और उपलब्धता 329.96 लाख क्विंटल थी। 2019-20 में ये 246.94 और उपलब्धता 278.76 लाख क्विंटल रही। राज्यों के हिसाब से देखा जाए तो 2020-21 के रबी सीजन में बीजों की सबसे अधिक मांग करने वाले टॉप 5 राज्यों में उत्तर प्रदेश (49.5 लाख क्विंटल), गुजरात (44.43 लाख क्विंटल), पंजाब (41.61 लाख क्विंटल), पश्चिम बंगाल (37.65 लाख क्विंटल) और हरियाणा (17.8 लाख क्विंटल) थे। इसी साल खरीफ सीजन में सबसे ज्यादा बीजों की मांग आंध्र प्रदेश (16.38 लाख क्विंटल), मध्य प्रदेश (17.81 लाख क्विंटल), महाराष्ट्र (16.57 लाख क्विंटल), तेलंगाना (14.22 लाख क्विंटल) और कर्नाटक (10.98 लाख क्विंटल) थी। जरूरत की तुलना में इन सभी राज्यों में बीज की उपलब्धता अधिक रही।

2020-21 के खरीफ सीजन में सबसे अधिक बीजों की मांग धान (75.96 लाख क्विंटल), सोयाबीन (27.23 लाख क्विंटल), मूंगफली (19.37 लाख क्विंटल), मक्का (11.61 लाख क्विंटल) और अरहर (2.72 लाख क्विंटल) रही। वहीं, इन्हीं फसलों के बीज की उपलब्धता क्रमश 79.83 लाख क्विंटल, 24.03, 19.65, 12.12 और 2.78 लाख क्विंटल क्विंटल रही। 2019-20 की तुलना में खरीफ सीजन में बीजों की मांग और उपलब्धता 2020-21 में अधिक रही है। साथ ही 2020-21 के रबी सीजन में आलू के बीज मांग की तुलना में कम उपबल्ध हो पाए। आलू के बीज की जरूरत

99.96 लाख क्विंटल थी, जबकि उपलब्धता 99.23 लाख क्विंटल रही। आलू के अलावा सबसे अधिक बीज की मांग गेहूं (124.75 लाख क्विंटल), धान (22.83 लाख क्विंटल), सभी प्रकार का चना (22.03 लाख क्विंटल)और मूंगफली (6.98 लाख क्विंटल) की रही।

बीजों की पर्याप्त उपलब्धता के बाद भी देश का बीज आयात निर्यात की तुलना में काफी अधिक है। कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण की रिपोर्ट के अनुसार भारत ने 2019-20 में 851.78 करोड़ रुपए के 1,77,768.48 क्विंटल फल और सब्जी के बीज आयात किए। जबकि इसी साल 723.43 करोड़ रुपए कीमत के 14,796 क्विंटल बीज निर्यात किए गए। इसी तरह 2018-19 में 805.58 करोड़ रुपए में 1,96090.92 क्विंटल टन फल और सब्जी के बीज आयात किए। जबकि निर्यात 849.23 करोड़ रुपए रहा। 2017-18 में फल और सब्जी के बीजों का आयात 768.21 करोड़ था। इस साल निर्यात 670.89 करोड़ रुपए रहा। आंकड़ों से स्पष्ट है कि फल एवं सब्जी के बीजों के मामले में हम निर्यात कम कर रहे हैं जबकि देश का आयात काफी ज्यादा है।

पिछले 30 सालों में भारत के बीज मार्केट ने काफी तरक्की की है। भारत सरकार ने इसके विकास के लिए तीन चरण (1977-78, 1978-88 और 1990-91) में राष्ट्रीय बीज प्रोजेक्ट चलाए थे। इन प्रोजेक्ट्स की बदौलत भारत में बीज व्यापार ने एक इंड्रस्टी का रूप लिया है। हालांकि इसमें निजी कंपनियों का बोलवाला ज्यादा है।

राष्ट्रीय बीज निगम लिमिटेड के अनुसार भारत में 60 फसलों की करीब 600 किस्मों के बीज से फसलों का उत्पादन हो रहा है। इसमें अनाज, दालें, तिलहन, फाइबर, हरी खाद, चारा और सब्जी शामिल हैं। देश में 8 फार्म और 12500 रजिस्टर्ड बीज उत्पादक हैं। 2019-20 में देश में देश में अनाजों (गेहूं, धान, मक्का, ज्वार, बाजरा ) जैसी फसलों के लिए बीज की मांग 6.71 लाख क्विंटल थी। जबकि भारत ने इन अनाजों के 14.90 लाख क्विंटल बीज उत्पादित किए। दालों के मामले में हमारी जरूरत 1.71 लाख क्विंटल की थी और 2.52 लाख क्विंटल दालों के बीज उत्पादित हुए।

हालांकि तिलहनों के बीज की मांग की तुलना में उत्पादन काफी कम रहा। तिलहन के बीज की मांग 4.34 लाख क्विंटल थी, लेकिन उत्पादन 4.31 लाख क्विंटल ही रहा। 2019-20 में देश में बीजों की कुल मांग 13.26 लाख क्विंटल थी और उत्पादन 22.25 लाख क्विंटल रहा। राष्ट्रीय बीज निगम लिमिटेड की वार्षिक रिपोर्ट के मुताबिक साल 2018-19 में निगम ने बीजों के बिक्री से 1008 करोड़ रुपए कमाए। ये 2017-18 की तुलना में 42.42 प्रतिशत ज्यादा है। इसमें सरकारी एजेंसियों ने 54.17 प्रतिशत और निजी एजेंसियों ने 45.83 प्रतिशत की बिक्री की। बीज व्यापार में कुछ बड़ी कंपनी का एकाधिकार है। बीज बाजार में मोंसेंटो, डूपोन्ट और सिंजेंटा नाम की कंपनियां का आधे से ज्यादा बाजार पर कब्जा है। ये तीनों कंपनियां 55 प्रतिशत से ज्यादा बीज दुनियाभर में बेचती हैं।

ला वाया कैंपेसिना नाम के एक अंतर्राष्ट्रीय किसान संगठन का मानना है कि बीज की गुणवत्ता, प्रमाणीकरण, नकली बीज की रोकथाम के लिए नियम और बाजार में पारदर्शिता लाने के नाम पर अलग-अलग देश नए कानून लेकर आ रहे हैं, लेकिन ये कानून अप्रत्यक्ष रूप से किसानों की स्वतंत्रता और बीज पर उनके स्वामित्व को सीमित भी कर रहे हैं।

**सरकारी तंत्र ने रणनीति के तहत किसानों को पारंपरिक बीज संरक्षण के तरीके से दूर किया और उसकी निर्भरता बीज निर्माता कंपनी पर तय कर दी**

कई देशों में ऐसे कानूनों का विरोध भी दर्ज किया जा रहा है। कई देशों ने आरोप लगाया है कि बायर के स्वामित्व वाले मोनसेंटो अपने स्वयं के पेटेंट बीजों को बढ़ावा देने और उनकी सुरक्षा के लिए नए कानून के पीछे है। मोंसेंटो पहले ही मलावी सरकार के स्वामित्व वाली बीज कंपनी पर कब्जा कर चुका है।

इस संबंध में मलावी जैसे देशों का तर्क है कि उत्पादकता के लिए एक विश्वसनीय और स्वस्थ बीज महत्वपूर्ण है। कंपनियां अपने पेटेंट किए गए बीजों के लिए संरक्षित बाजार चाहती हैं। मलावी का नया बीज बिल ठीक यही कर रहा है।

17 दिसंबर, 2017 को इस विवादास्पद बहस को और तेज कर दिया गया। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले किसानों और अन्य लोगों के अधिकारों की घोषणा को मंजूरी दी। यह घोषणा उन किसानों को मानवाधिकार संरक्षण प्रदान करती है, जिनकी बीज संप्रभुता को खतरा है।

इसी फरवरी टिमोथी वाइज की किताब *ईटिंग टुमॉरोः एग्रीबिजनेस, फैमिली फार्मर्स एंड द बैटल फॉर द फ्यूचर ऑफ फूड* का विमोचन किया गया। उनकी पुस्तक का तर्क है कि छोटे किसान, जो हमारे भोजन का अधिकांश उत्पादन करते हैं, को उनकी समस्याओं के समाधान की तलाश में अधिक गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

A Down To Earth ANNUAL

# STATE OF INDIA'S ENVIRONMENT 2021

PRICE
~~Rs.600~~
Rs.350

Country's most credible annual statement on the state of affairs in environment and development sectors.

This is the much awaited 8th edition in our popular SOE Annual Issue series. Professionals, Academics, Consultants and Decision makers, as well as Students especially those preparing for competitive exams like the Civil Services, look forward to this yearly update and SOE 2021 would be another collector's edition.

**FOCUS**

- A year after **COVID-19 pandemic**
- State of the states
- The Decade of Biodiversity

**IT COVERS:**
Climate change | Agriculture | Energy | Water | Sanitation | Waste | Industry | Habitat | Air pollution | Forest & Wildlife | Data Dives

**YOU CAN RESERVE YOUR COPY NOW !!!**

Please place your order online by visiting us at
www.downtoearth.org.in/books
or mail your order along with a Cheque for the required amount, drawn in favour of 'Society for Environmental Communications', to:
**Society for Environmental Communications,**
41, Tughlakabad Institutional Area, New Delhi - 110062

IN CASE OF ANY QUERY, WRITE TO RAMACHANDRAN AT: rchandran@cseindia.org

# भारतीय कृषि का भविष्य आत्मनिर्भर किसान में निहित

## नए कृषि कानूनों ने छोटे और सीमांत किसानों के भविष्य पर संकट खड़ा कर दिया है

**कपिल शाह**

**हालिया कृषि** कानूनों ने छोटे और सीमांत किसानों की बड़ी तादाद वाले कृषि प्रधान देश में खेती के भविष्य को लेकर हमें सोचने पर मजबूर कर दिया है। अगर हम इसी तरह रसायन के बेतहाशा इस्तेमाल, एक फसली खेती और बाजार खरीद इनपुट पर निर्भर मॉडल को जारी रखते हैं तो "खेती का भविष्य क्या होगा" का जबाव बहुत आसान है। ये मॉडल न केवल बहुसंख्यक किसानों को फायदा देने में विफल रहा है बल्कि पारिस्थितिकी, सामाजिक और आर्थिक (करदाताओं के पैसे पर बोझ) मामलों में भी दिवालिया साबित हुआ है। हालिया अनुवांशिक रूप से संशोधित लॉलीपॉप ने भी रसायन के इस्तेमाल को बढ़ाया, उपज में इजाफा बरकरार रखने में विफल रहा और बौद्धिक संपदा अधिकार के जरिए कंपनियों के नियंत्रण को बढ़ावा दिया। कृषि उत्पादों के अनियंत्रित निजी व्यापार को प्रोत्साहित करना भी इसी का एक हिस्सा है।

संयुक्त राष्ट्र एजेंसी की रिपोर्ट "द इंटरनेशनल असेसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल नॉलेज, साइंस एंड टेक्नोलॉजी फॉर डेवलपमेंट (आईएएएसटीडी, 2009)" में 110 मुल्कों के 400 से ज्यादा विज्ञानियों ने बताया कि "उच्च उपज की सफलता" "उच्च पर्यावरणीय कीमत" पर आई है और इस सफलता ने "विकासशील देशों के गरीबों की सामाजिक और आर्थिक समस्या का समाधान नहीं किया"। भारत में ये मॉडल भारी कृषि चिंता और देश की राजधानी की दहलीज पर अभूतपूर्व प्रदर्शन का कारण बना।

रिपोर्ट कहती है कि "न्यायसंगत विकास और चिरस्थायित्व के लक्ष्य को प्राप्त करने में कृषि संबंधी जानकारी, विज्ञान और तकनीक की भूमिका पर बुनियादी तौर पर पुनर्विचार करने का ये सही वक्त है। विविध पारिस्थितिकी तंत्रों के छोटे किसानों की जरूरतों व जिन क्षेत्रों में ज्यादा जरूरी है, उन क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।" फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेशन (एफएओ) की साल 2017 की रिपोर्ट "द फ्यूचर ऑफ फूड एंड एग्रीकल्चरः ट्रेंड्स एंड चैलेंजेज" में उत्पादकता को बढ़ाते हुए प्राकृतिक संसाधनों के आधार की रक्षा और विस्तार के लिए नवीन प्रणालियों का सुझाव दिया गया है....जो स्वदेशी और पारंपरिक ज्ञान पर आधारित कृषि विज्ञान, कृषि-वानिकी, जलवायु-स्मार्ट कृषि और संरक्षित कृषि जैसे "समग्र" दृष्टिकोणों के लिए एक परिवर्तनकारी प्रक्रिया होगी।

अतः भारतीय कृषि का भविष्य क्या होना चाहिए, इस सवाल का

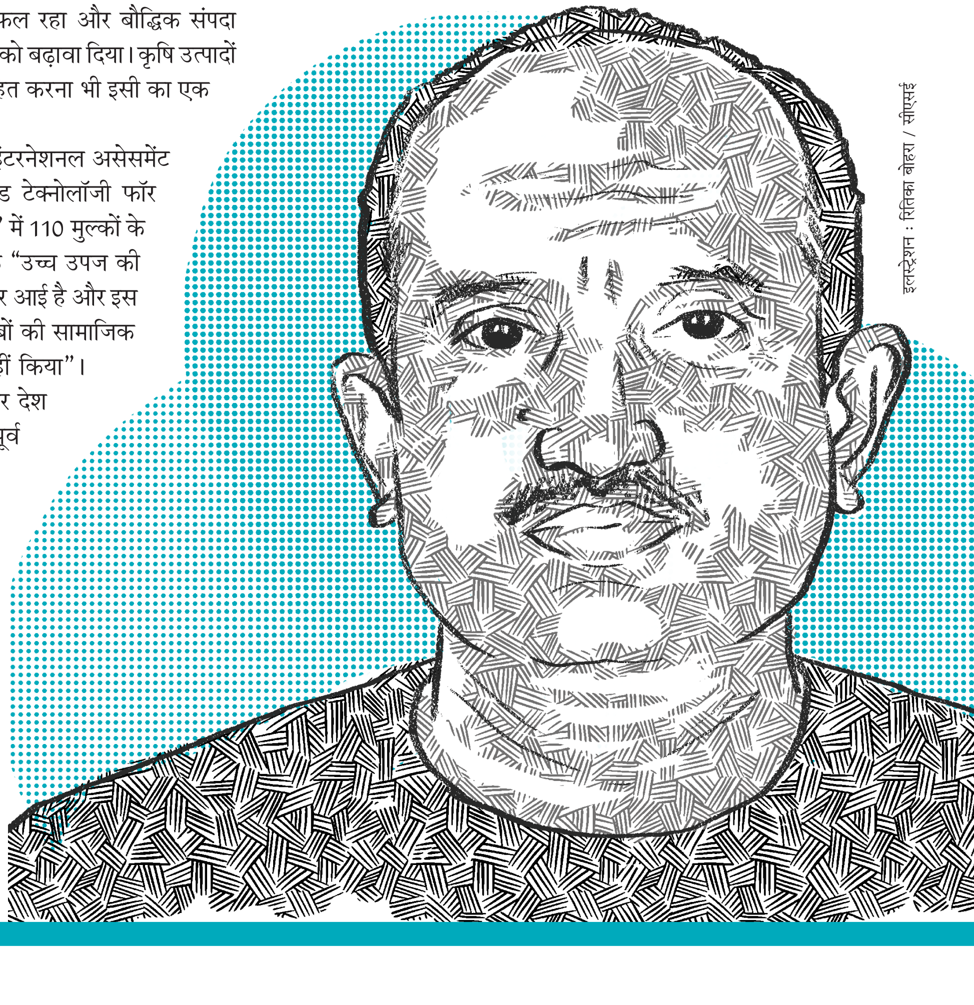

इलस्ट्रेशन : रितिका बोहरा / सीएसई

जवाब बहुत सीधा और आसान है। हालांकि इसमें बड़े बदलाव की जरूरत है। सदियों पुरानी और सिद्धांतों पर आधारित भारत की कृषि पद्धति में नवाचार, कड़ी मेहनत करने वाले और उद्यमी किसानों की पारिस्थितिक रूप से टिकाऊ, आर्थिक रूप से व्यवहार्य और सामाजिक रूप से सिर्फ कृषि-पारिस्थितिकी आधारित खेती की कई हालिया कहानियां वैज्ञानिक संस्थानों के अपने बड़े नेटवर्क के माध्यम से प्रदर्शित की गई हैं, जो राजनीतिक इच्छाशक्ति के बल पर निश्चित रूप से भारतीय खेती की दिशा बदल सकती हैं। आईएएएसटीडी रिपोर्ट के अनुसार संभावित कार्रवाइयों में जैविक कृषि जैसे कम प्रभाववाली प्रथाओं में सुधार करना और जल, पशुधन, वन और मत्स्य पालन के स्थायी प्रबंधन के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना शामिल है। नीति-निर्माता अस्थयी प्रथा को प्रोत्साहित करने वाली सब्सिडी समाप्त कर स्थायी प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए प्रोत्साहन प्रदान कर सकते हैं।

ये जानना बहुत जरूरी है कि जिस यूरिया पर सब्सिडी दी जाती है, उसका 33 प्रतिशत हिस्सा ग्लोबल वार्मिंग और इतना ही प्रतिशत पानी में नाइट्रेट का प्रदूषण बढ़ाता है। बाकी 33 प्रतिशत ही पौधों तक पहुंचता है और ये यूरिया प्रायः कीड़ों को फसल बर्बाद करने के लिए लुभाता है।

खेती एक गूढ़ व्यवस्था है, जिसमें न केवल विज्ञान की कई शाखाएं बल्कि सामाजिक विज्ञान भी शामिल है, क्योंकि सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस पर राजनीतिक, अर्थव्यवस्था और व्यापार से जुड़ी नीतियों का असर पड़ता है। हमारे जीवन की मूल्य व्यवस्था और आकांक्षाओं का प्रभाव भी इस पर पड़ता है। इसलिए कृषिगत बदलावों में बहुविध दृष्टिकोण की जरूरत है, यूरिया की जगह कंपोस्ट के इस्तेमाल से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। बदलाव का व्यवस्थित दृष्टिकोण न केवल ग्रामीण संकट को खत्म करेगा, बल्कि समाज की दूसरी समस्याओं जैसे बेरोजगारी, शहरीकरण, अस्वास्थ्यकर भोजन, प्राकृतिक स्रोतों के प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग को भी हल देगा।

**कृषि-पारिस्थितिकी आधारित खेती को कई वैज्ञानिक संस्थानों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। यह राजनीतिक इच्छाशक्ति के बल पर निश्चित रूप से भारतीय खेती की दिशा बदल सकती है**

बड़े बदलाव की शुरुआत नीति निर्धारकों की उत्पादन केंद्रित मानसिकता को वहनीयता केंद्रित मानसिकता में तब्दीली के साथ करनी होगी। उनमें अभी कृषि-पारिस्थितिकी मॉडल को लेकर विश्वास नहीं जग सका है। नीति आयोग की हालिया कोशिशें स्वागतयोग्य हैं, लेकिन दुर्भाग्य से ये कोशिशें विज्ञान और सबूत की जगह धारणा पर आधारित हैं। इसलिए आईसीएआर विज्ञानी आपस में ही कानाफूसी करते रह जाते हैं और तब तक नीति आयोग भारतीय परम्परागत कृषि पद्धति ले आता है। परम्परागत कृषि पद्धति को प्रमोट करने वाले "ओल्ड इज गोल्ड" और "भारत का सबकुछ बेहतरीन है" की फंतासी दुनिया में विचरते रहते हैं। भारत को वैश्विक स्तर पर दीर्घकालिक प्रगतिशील विज्ञान से बनी तकनीक और हमारी अपनी परम्परा का विवेकपूर्ण मिश्रण चाहिए। हरित क्रांति की तरह कृषि पारिस्थितिकी के तहत मिलने वाला तकनीकी पैकेज एक समान और अचानक नहीं हो सकता है। हर खेती अद्वितीय है, इसलिए किसानों को कृषि-पारिस्थितिकी के कुछ बुनियादी सिद्धांतों और आसान तकनीकों से रूबरू कराना चाहिए। इसके बाद उन्हें प्रयोग, नवाचार व स्थानीय स्तर पर जो अनुकूल हो उसे लागू करने के लिए छोड़ देना चाहिए। ये सिद्ध तकनीकों को हतोत्साहित नहीं करता है बल्कि लगातार सुधार के असीमित मौके देता है। तकनीक में प्रगति जरूर जारी रहनी चाहिए। नवाचार और सुधार सभी सफल कृषि-पारिस्थितिक किसानों का बेहद सामान्य चरित्र है।

कृषि विज्ञानी अब ये समझने लगे हैं कि वे दिन गए जब शोध प्रोजेक्ट का मुख्य लक्ष्य पैदावार और वित्तीय लागत-लाभ अनुपात से जुड़ा होता था। अब वे पानी के इस्तेमाल की क्षमता, ऊर्जा इस्तेमाल की क्षमता, जैव विविधता सूचकांक, कार्बन उत्सर्जन, प्रदूषण, स्वास्थ्य पर प्रभाव, सामाजिक संकट, महिला सशक्तीकरण, किसानों की कुशलता आदि के आधार पर तकनीकों का मूल्यांकन करते हैं। आजादी के तुरंत बाद वे कृषि पंडित जो स्थानीय बीजों व रसायनमुक्त तकनीकों की मदद से हरित क्रांति से एक दशक पहले तक उच्च पैदावार लेते थे, कृषि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का कभी भी हिस्सा नहीं बन पाए। दुर्भाग्य से कृषि विज्ञानी अब भी हरित क्रांति के दौर में अमेरिका में हुए प्रशिक्षण की विरासत को ढो रहे हैं। सर अलबर्ट होवार्ड जैसे महान विज्ञानियों ने एक सदी पहले भारत की पारंपरिक खेती की प्रशंसा की थी, लेकिन ज्यादातर विज्ञानी अब तक इनसे अनजान हैं। इस चूक में सुधार करने का ये सही वक्त है। हमें व्यवस्थित दृष्टिकोण के साथ और सफल कृषि-पारिस्थितिक किसानों की मदद से कृषि विज्ञानियों के लिए कृषि विज्ञान के पुनर्पाठ कार्यक्रम को लागू करने पर विचार करना चाहिए।

हमारे प्रतिभावान किसानों के पास मौजूद जानकारियां एग्रो-इनपुट डीलरों के प्रभाव में खत्म हो रही हैं। हाल ही में पता चला है कि ओडिशा के मुनीगोडा में हजारों किसानों को लोन के चंगुल में फंसाकर उनसे जहरीले कीटनाशक का इस्तेमाल कर सफलतापूर्वक अवैध तरीके से कपास की खेती कराई जा रही थी और मौलिक वनों को प्रदूषित किया जा रहा था। क्या यह किसानों को कर्ज (मृत्यु) के जाल में पहुंचाने जैसा नहीं है? एग्री-इनपुट कंपनियों को बेहतर तरीके से नियंत्रित करने की जरूरत है।

## शिक्षा के स्तर पर कृषि उपेक्षित

ये दुखद बात है कि एक कृषि प्रधान देश में शिक्षा के हर स्तर में कृषि उपेक्षित है। युवाओं के लिए क्यों कृषि प्रशिक्षण अनिवार्य नहीं है? शाक वाटिका (किचेन गार्डेनिंग) या कृषि संबंधी प्रशिक्षण स्कूल स्तर क्यों नहीं उपलब्ध है? हर नागरिक को ये बताना चाहिए कि भोजन का उत्पादन कैसे होता है, किसान किस तरह की मुश्किलों का सामना करते हैं और कृषि से जुड़ा समुदाय कितना लचीला है। उम्मीद की जानी चाहिए कि इससे किसानों को सम्मानजनक न्यूनतम व सुनिश्चित कमाई होगी।

किसानों को अपने उत्पाद किसी भी तरह बेचने का अधिकार होना ही चाहिए, लेकिन इसमें समान अवसर मिलना चाहिए। पिछले एक दशक में ज्यादातर राज्यों ने निजी मंडी की इजाजत दे दी, ठेका खेती की सुविधा दी,

फार्मर्स प्रोड्यूसर्स आर्गनाइजेशन (एफपीओ) और फार्मर-कंज्यूमर मार्केट (एफसीएम) को प्रोत्साहित किया। नियंत्रित तरीके से अंतरराज्यीय व ई-ट्रेडिंग को सुविधाजनक बनाया। लेकिन, दूसरे देशों में अनियंत्रित व मुक्त व्यापार ने किसानों खासकर छोटे किसानों को संकट में डाल दिया। ये विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि ऐसे अनियंत्रित निजी बाजार भारत में दूसरी तरह का परिणाम लाएगा।

भारत में ही बिहार और गन्ना उद्योग जैसे बहुत उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि मुक्त बाजार फेल हो गया है। भारतीय कृषि की विविधता भरी प्रकृति और कृषि बाजारों को संबंधित राज्य सरकारों द्वारा बेहतर तरीके से प्रबंधन किया जा सकता है। "एक आकार ही सबके लिए फिट होता है" एक बुरा बदलाव है। किसान-हितैषी मार्केटिंग तरीकों मसलन किसान बाजार, किसान दुकान व फार्म/गांव स्तर पर मूल्य संवर्धन को प्राथमिकता देनी चाहिए। एफपीओ भी इतना आसान नहीं है कि हर जगह इसे प्रभावी तरीके से लागू किया जाए जैसा कि सामान्य तौर पर प्रोजेक्ट किया जाता है। किसानों को सहयोग, एफपीओ में पंजीयन और आधिकारिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भरोसे में लेने के साथ ही समस्या शुरू होती है।

सामान्य तौर पर जैविक किसानों को अपने उत्पाद बेचने में ज्यादा सहूलियत मिलती है, लेकिन किसान व किसान समूहों को टैक्स और नियंत्रण में छूट देकर व्यापार करने में सहूलियत में निवेश करने की तत्काल जरूरत है। किसानों की मोलभाव की शक्ति को मजबूत किए बिना निजी कंपनियों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। निजी कंपनियों को लाइसेंसिंग, पारदर्शिता, बैंक गारंटी, तकनीकी सत्यापन, न्यूनतम समर्थन मूल्य, किसान हितैषी विवाद निपटान तंत्र, बुनियादी ढांचे के विकास के संबंधित अनिवार्यता और खरीद तथा स्टॉक की सीमा तय कर नियंत्रित किया जाना चाहिए। भारतीय संदर्भ में कॉरपोरेट खेती के लिए कोई जगह नहीं है।

लैंड होल्डिंग के सिकुड़ते आकार को देखते हुए को-ऑपरेटिव व सामूहिक दृष्टिकोण बेहतरीन लाभकारी विकल्प लगता है। दक्षिणी गुजरात में फल-सब्जी व शुगर को-ऑपरेटिव अच्छा उदाहरण है। एपीएमसी को राजनीतिक प्रभावों से मुक्त रखते हुए बेहतर नियंत्रण की जरूरत है।

एपीएमसी की पहुंच समान रूप से हर तरफ होनी ही चाहिए। सभी कृषि पारिस्थितिक किसानों को न केवल रासायनिक खाद (4,500 रुपए प्रति हेक्टेयर) सब्सिडी के रूप में बेहतर प्रोत्साहन मिलना चाहिए बल्कि उच्च कार्बन उत्सर्जन पर रोक, पानी और बिजली के कम इस्तेमाल, मिट्टी की सेहत में सुधार, वर्षा जल संचयन, मिश्रित खेती के जरिए जैवविविधता के संरक्षण जैसी पर्यावरणीय सेवाएं भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

आलू से पोटैटो चिप्स बनाने के लिए हमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों की जरूरत क्यों है? कृषि-प्रसंस्करण और विभिन्न प्रकार के अणुजीव और वानस्पतिक के लिए किसी रॉकेट साइंस की जरूरत नहीं है। ये फार्म/ग्रामीण स्तर पर बहुत मामूली वैज्ञानिक प्रशिक्षण और निवेश से किया जा सकता है। इससे हजारों ग्रामीण युवाओं को नौकरी मिल सकती है। स्थानीय स्तर पर तैयार बीज बेहतर हैं। बीज तैयार करने वाले किसान खासकर महिलाएं हमारी बीज धरोहर की असल खोजकर्ता और संरक्षक हैं, इन्हें प्रोत्साहित करने की जरूरत है।

गांवों में विशेष अणुजीव संरोपण और छोटी मशीनरी की मदद से वैज्ञानिक खाद कार्यक्रमों को लागू कर जैव ईंधन में निहित पोषक तत्वों और ऊर्जा को पुनर्चक्रित करने की बहुत गुंजाइश है। शहरी क्षेत्रों को कृषि भूमि से निकले पोषक तत्वों को वापस करना चाहिए। खेत से शहरी स्तर तक बायोगैस-खाद संयंत्र को विशेष बढ़ावा देने की जरूरत है। स्थानीय रूप से उपलब्ध कृषि-इनपुट्स से उत्पादन लागत कम होगी और किसानों का पैसा स्थानीय स्तर पर प्रसारित होगा। मरती कृषि से सदाबहार कृषि में संक्रमण के लिए भारत ने पर्याप्त आत्मविश्वास और विशेषज्ञता हासिल कर ली है। जैविक खेती के लिए आईसीएआर-नेटवर्क प्रोजेक्ट कई जगहों पर कई सालों तक अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि ज्यादातर फसलों पर जैविक पद्धति का सकारात्मक प्रभाव पड़ा और रासायनिक से जैविक पद्धति में प्रवेश के 2-3 साल बाद ही जैविक खेती से रासायनिक खेती जितनी ही या उससे 4 से 14 प्रतिशत अधिक पैदावार हुई। ये रासायनिक खाद के ज्यादा इस्तेमाल होने वाले पंजाब व हरियाणा सभी राज्यों के किसानों के अनुभव से साबित होता है कि जैविक खेती करने वाले किसानों को पैदावार से समझौता नहीं करना पड़ा और बाजार पर उनकी निर्भरता कम हुई, कर्ज के चंगुल से मुक्त हुए और बिना किसी आर्थिक मदद के तनावमुक्त खेती कर रहे हैं। सरकार और एनजीओ के कार्यक्रमों के जरिए महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और तेलंगाना में बड़े स्तर पर जैविक खेती का चुनाव इस बात का भी सबूत है कि हम संस्थानिक रूप से भी सक्षम हुए हैं।

**कृषि-परिस्थितिकी आधारित खेती कोई फंतासी नहीं है। ये प्रगतिशील विज्ञान और तकनीक पर आधारित एक स्थापित पेशा है। भारत वैश्विक कृषि को इस मार्ग पर चलने में नेतृत्व कर सकता है**

असामान्य बदलाव की जरूरत को जो लोग अनदेखी करते हैं और कृषि-पारिस्थितिकी की सफलता को संदेह की नजर से देखते हैं, वे आलसी हैं। कृषि-पारिस्थितिकी आधारित खेती कोई फंतासी नहीं है। ये प्रगतिशील विज्ञान और तकनीक पर आधारित एक स्थापित पेशा है। भारत वैश्विक कृषि को इस मार्ग पर चलने में नेतृत्व कर सकता है। खेती को लेकर मौजूदा प्रदर्शन एक पुरानी बीमारी का दर्दनाक लक्षण है। इससे हमारी आंखें खुल जानी चाहिए और इसे भारतीय कृषि के लिए "तमसोमाज्योतिर्गमय" मानना चाहिए। भारतीय कृषि की सफलता आत्मनिर्भरता की आत्मा में बसी है।

*(लेखक कृषि में स्नातकोत्तर हैं और वर्ष 1985 से ही जैविक खेती को प्रोत्साहित कर रहे हैं)*

# दोगुनी आमदनी का लक्ष्य पहुंच से दूर

प्रधानमंत्री ने 2022 तक किसानों की आमदनी को दोगुनी करने का लक्ष्य रखा है। इसके लिए कृषि विज्ञान केंद्र ने पायलट प्रोजेक्ट के रूप में हर जिले के दो गांवों को गोद लिया है। क्या इन गांवों में आमदनी बढ़ी या दोगुनी हुई है?

**राजू सजवान**

फोटो : विकास चौधरी / सीएसई

**2** **8 फरवरी** 2016 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने उत्तर प्रदेश के शहर बरेली में किसान रैली को संबोधित करते हुए कहा कि उनका सपना है कि जब देश साल 2022 में आजादी की 75वीं वर्षगांठ मना रहा हो तो किसानों की आमदनी दोगुनी हो जाए। फरवरी 2021 में इस बात को कहे पांच साल हो जाएंगे। लेकिन सरकार के अपने ही आंकड़े बताते हैं कि कृषि विकास दर जिस गति से चल रही है, उससे नहीं लगता कि इस लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है।

प्रधानमंत्री की घोषणा के बाद ही कुछ विशेषज्ञों का अनुमान था कि किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लिए 14.86 फीसदी सालाना कृषि विकास दर की जरूरत पड़ेगी। लेकिन बाद में यह स्पष्ट किया गया कि सरकार किसानों की आमदनी का आधार वर्ष 2015-16 मानेगी और कृषि वर्ष 2022-23 में यह लक्ष्य हासिल किया जाएगा। इसका मतलब था कि सरकार को सात साल का समय मिलेगा। नीति आयोग के सदस्य रमेश चंद ने मार्च 2017 में एक पॉलिसी पेपर जारी किया, जिसमें कहा गया कि सात साल में किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लिए कृषि क्षेत्र की सालाना विकास दर 14.86 प्रतिशत की नहीं, बल्कि 10.4 प्रतिशत की जरूरत पड़ेगी।

इस पॉलिसी पेपर में रमेश चंद ने कहा था कि 2001 से 2014 के बीच कृषि उत्पादन में 3.1 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई थी। इस हिसाब से अगले सात साल (2014 से 2021 तक) में कृषि से होने वाली आय में 18.7 प्रतिशत वृद्धि रहेगी। इसलिए सरकार किसानों की दोगुनी आमदनी का लक्ष्य हासिल करने के लिए पशुपालन से होने वाली आय को भी शामिल करना चाहती है, इससे किसानों की आमदनी में 27.5 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। रमेश चंद के मुताबिक, पशुपालन और डेरी की आमदनी को भी बढ़ाया जाए तो सब मिलाकर 2025 तक किसानों की आमदनी में 107.5 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है। लेकिन अब तक क्या कुछ हुआ है? हकीकत क्या है?

15 सितंबर 2020 को लोकसभा में वाईएसआर कांग्रेस पार्टी के सांसद मारगनी भरत और टीआरएस पार्टी के सांसद रणजीत रेड्डी द्वारा पूछे गए एक सवाल के जवाब में कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर ने जानकारी दी कि किसानों की आय का आकलन राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के द्वारा किया जाता है। एनएसएसओ ने पिछला अनुमान कृषि वर्ष 2012-13 में तैयार किया था और नए अनुमान अभी उपलब्ध नहीं हुए हैं। हालांकि तोमर ने दावा किया कि किसानों के कल्याण के लिए चलाई जा रही विभिन्न गतिविधियां व योजनाओं का जो असर दिख रहा है, उससे संकेत मिलता है कि किसानों की आय दोगुनी करने संबंधी कार्यनीति सही दिशा में चल रही है। अपने इस जवाब में तोमर ने स्पष्ट तौर पर कहा था कि ऐसी कोई भी आय मूल्यांकन रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है, जिससे किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लक्ष्य पर कोरोनावायरस से पड़ने वाले असर का मूल्यांकन किया जा सके। इसका मतलब है कि सरकार आय दोगुनी करने की बात तो कर रही है, लेकिन साल दर साल इस तरह का कोई आकलन नहीं किया जा रहा है, जिससे पता चल सके कि सरकार अपने लक्ष्य से कितनी दूर है। कृषि मंत्री ने इतना जरूर कहा था कि एनएसएसओ वर्ष 2019-20 के लिए कृषि भू-स्वामियों की स्थिति का मूल्यांकन और पशुधन का सर्वेक्षण कर रहा है। यानी एनएसएसओ की इस रिपोर्ट में ही पता चल पाएगा कि चार साल के दौरान किसानों की आमदनी में कितनी वृद्धि हुई?

3 मार्च 2020 को कृषि पर बनी स्थायी समिति की रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत की गई, जिसमें बताया गया कि किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लक्ष्य को हासिल करने के लिए कई स्तर पर काम चल रहा है। सरकार ने सभी संबंधित विभागों को इस काम में जुटने के निर्देश दिए थे। इसके मद्देनजर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) ने किसानों की

**"सरकार ने कहा कि हमारी आमदनी दोगुनी होगी, लेकिन खाद, डीजल, कीटनाशक, बीज, मजदूरी महंगा होने से आमदनी कम ही हो रही है। हर साल लागत बढ़ रही है"**

**—आशुतोष मिश्रा**, हरियावां, हरदोई, उत्तर प्रदेश

आय दोगुना करने के लिए राज्यों के लिए अलग-अलग कार्यनीति दस्तावेज तैयार कर राज्य सरकारों को भेजा है। इस कार्यनीति को सही मायने में लागू करने के लिए आईसीएआर ने हर जिले में मॉडल के तौर पर दो गांवों के किसानों की आमदनी दोगुनी करने का बीड़ा उठाया है और हर जिले में कृषि विज्ञान केंद्र को यह जिम्मेवारी सौंपी गई कि वे दो गांव को गोद ले लें। रिपोर्ट के मुताबिक, 30 राज्यों व केंद्र शासित क्षेत्रों के 651 केवीके ने 1,416 गांवों को गोद लिया है। इन मॉडल गांवों को "डबलिंग फार्मर्स इनकम विलेज" नाम दिया गया है। इसके अलावा आईसीएआर से संबंद्ध अलग-अलग संस्थान भी कुछ मॉडल पर काम कर रहे हैं, जैसे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ शुगर रिसर्च (आईआईएसआर), लखनऊ ने 2017 में पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (पीपीपी) मॉडल अपनाते हुए उत्तर प्रदेश के आठ गांव को गोद लिया है और 2028 किसानों की आमदनी दोगुनी करने का बीड़ा उठाया है।

*डाउन टू अर्थ* ने झारखंड, ओडिशा, असम, त्रिपुरा, नागालैंड, मिजोरम, मेघालय, मणिपुर, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, अरुणाचल प्रदेश, बिहार के कुल 66 कृषि विज्ञान केंद्रों से संपर्क किया। इनमें से केवल 22 केंद्रों ने जानकारी दी कि उन्होंने अपने जिले में 2-2 गांव गोद लिए हुए हैं। 15 केंद्रों ने बताया कि उन्होंने 2018 में गांव गोद लिए थे। 4 केंद्रों ने कहा कि उन्होंने 2019 में गांव गोद लिए हैं, जबकि 3 केंद्रों ने 2017 में ही गांव गोद ले लिए थे। लेकिन 44 कृषि विज्ञान केंद्रों ने अलग-अलग वजहों से यह जानकारी ही नहीं दी। 27 कृषि विज्ञान केंद्र के अधिकारियों ने सूचना देने से इनकार कर दिया। कुछ अधिकारियों का कहना था कि यह ऑफिशियल जानकारी है, वे यह सूचना नहीं दे सकते तो कुछ अधिकारियों ने कहा कि इस तरह की जानकारी लेने के लिए उन्हें ईमेल करना होगा तो कुछ अधिकारियों ने *डाउन टू अर्थ* के सवाल सुनते ही फोन काट दिया। 21 जिले ऐसे थे, जहां काफी प्रयासों के बाद फोन ही नहीं मिले। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि जिला कृषि विज्ञान केंद्र की जिम्मेवारी होती है कि उसके अधिकारी व वैज्ञानिक किसानों को खेती से संबंधित सलाह दें, लेकिन जब इन केंद्रों के फोन ही नहीं मिलते हैं तो किसानों को क्या सलाह दी जाती होगी। दिलचस्प बात यह है कि जिन 22 कृषि विज्ञान केंद्रों के अधिकारियों ने जानकारी दी, उनमें से ज्यादातर ने कहा कि किसानों की आमदनी दोगुनी करने का लक्ष्य 2022 रखा है। इस योजना का मकसद यह है कि इन मॉडल गांवों से सीख लेते हुए राज्य सरकार व जिला प्रशासन सभी गांवों के किसान की आमदनी दोगुनी करने की योजनाएं बनाएं, लेकिन जब मॉडल गांवों की आमदनी 2022 में दोगुनी होगी तो दूसरे गांवों के किसानों की आमदनी दोगुनी कब होगी? *डाउन टू अर्थ* ने ऐसे कुछ गांवों का दौरा किया, जहां आमदनी दोगुनी करने पर काम किया जा रहा है।

## उत्तर प्रदेश

*डाउन टू अर्थ* ने उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के पांच गांवों का दौरा किया। इन गांवों के किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लिए इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ शुगर रिसर्च और डीसीएम श्रीराम इंडस्ट्रीज लिमिटेड के बीच 2017 में समझौता हुआ था। इसके तहत हरदोई जिले के छह गांव और लखीमपुर खीरी जिले के दो गांवों को गोद लिया गया। इस समझौते में कहा गया कि इन गांवों के किसानों की आमदनी 2020-21 तक दोगुनी कर दी जाएगी। यानी कि मार्च 2021 तक इन गांवों के किसानों की आमदनी दोगुनी हो जाएगी। *डाउन टू अर्थ* ने हरदोई के हरियावां गांव पहुंचकर किसानों से बात की। इस गांव की जमीन पर डीसीएम श्रीराम लिमिटेड की चीनी मिल है। मिल ने हरियावां को भी गोद लिया है। गांव के लगभग सभी किसान गन्ने की खेती करते हैं। 73 साल के कामेश्वर प्रसाद मिश्रा लगभग 15 बीघा गन्ने की खेती करते हैं। वह कहते हैं कि कुछ में आमदनी बढ़ने की बजाय घटी है, क्योंकि कुछ साल पहले मिल वालों के कहने पर गन्ने की वैरायटी 0238 लगाते थे, उसकी पैदावार पहले ज्यादा होती थी, लेकिन अब घटती जा रही

**"मेरी आमदनी दोगुनी हुई है, लेकिन इसमें सरकार या कृषि विज्ञान केंद्र का कोई हाथ नहीं है। हमें तो यह तक नहीं पता कि हमारे गांव को गोद लिया गया है"**

**—अशोक कुमार**, गांव लोकरा, गुरुग्राम, हरियाणा

# दूर की कौड़ी

**लगभग दो साल का समय बचा है, लेकिन अब तक मॉडल गांवों के किसान ही दोगुनी आमदनी के लक्ष्य से दूर हैं**

## वादा

वर्ष 2017 में इंडियन काउंसिल फॉर एग्रीकल्चरल रिसर्च ने घोषणा की थी कि हर जिले में कृषि विज्ञान केंद्रों (केवीके) द्वारा दो गांवों को मॉडल के तौर पर विकसित किया जाएगा, ताकि 2022 तक किसानों की आमदनी दोगुनी करने का लक्ष्य हासिल किया जा सके

## हकीकत

हमने 66 कृषि विज्ञान केंद्रों में फोन किया, ताकि यह पता लगाया जा सके कि कितना काम हो चुका है

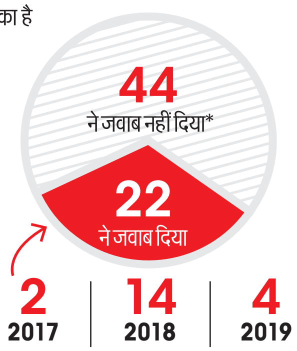


वह साल, जिसमें केवीके ने मॉडल गांव बनाने का काम शुरू किया

2 गांव के आंकड़े नहीं मिले

हमने 4 राज्यों के 10 मॉडल गांवों का दौरा किया और किसानों से पूछा

### क्या आपको पता है कि आपको गांव को मॉडल के तौर पर चुना गया है?

### क्या आपको लगता है कि 2022 तक आपकी आमदनी दोगुनी हो जाएगी?

स्रोत: सीएसई-डीटीई डाटा सेंटर

*इनमें वे केवीके शामिल हैं, जिन्होंने फोन काट दिया, बात करने से इनकार कर दिया या फोन नंबर बंद मिले

है। चार साल पहले 50-60 क्विंटल प्रति बीघा गन्ना होता था, अब 40 क्विंटल होता है।

जब उनसे पूछा गया कि चीनी मिल ने आईआईएसआर के साथ मिलकर उनका गांव गोद लिया है तो उन्होंने कहा कि उन्हें इसके बारे में नहीं पता, परंतु मिल वाले कभी-कभी आते हैं और उन्हें गन्ने के बारे में प्रशिक्षण देते हैं, लेकिन इसके बावजूद उनके गन्ने की उपज कम हो रही है। 15 बीघा में गन्ने की खेती करने वाले गांव के ही आशुतोष मिश्रा कहते हैं कि सरकार ने 2016 में किसानों की आय दोगुनी करने का वादा किया और उसके बाद से ही फसल की लागत बढ़ रही है। पहले खाद की कीमत 250 रुपए प्रति 50 किलोग्राम थी, अब 400 रुपए प्रति 45 किग्रा हो गई है। गन्ने की छिलाई की मजदूरी पहले 25-30 रुपए प्रति क्विंटल थी, अब 50 रुपए प्रति क्विंटल हो गई है। डीजल की कीमत पहले 60 रुपए लीटर थी, अब 71 रुपए लीटर है। कीटनाशक दवा की कीमत भी बढ़ गई। पोटाश पहले 250 रुपए प्रति 25 किग्रा था अब 600 रुपए प्रति 25 किग्रा हो गई है।

आशुतोष मिश्रा को जानकारी है कि उनके गांव को आमदनी दोगुनी करने के लिए गोद लिया गया, लेकिन वह कहते हैं कि गोद लेने के बाद भी उनके गांव में कुछ बड़ा बदलाव नहीं किया गया। हरियावां से सटा गांव अहमदी भी उन गांवों में शामिल है, जहां आमदनी दोगुनी की जानी है। यहां के 50 बीघा के किसान हरिकरण नाथ कहते हैं कि दो साल से तो गन्ने को रेड रोट (लाल सड़न) रोग लगना शुरू हो गया है। मिल वालों ने भी यह गन्ना लेना बंद कर दिया है तो ऐसे में किसानों की कैसे आमदनी बढ़ेगी? डीसीएम श्रीराम लिमिटेड की दूसरी चीनी मिल लोनी में हैं। लोनी भी डबलिंग फार्मर्स विलेज में शामिल है। लगभग 28 वर्षीय मुसीम ने बताया कि उनके गांव में चीनी मिल लग रही थी तो उस समय कई वादे किए गए लेकिन कोई भी वादा पूरा नहीं किया गया। अब सभी किसान गन्ना लगाते हैं, लेकिन तीन साल से गन्ने की कीमत नहीं बढ़ी। इसी गांव से सटा नगला भगवान भी मॉडल विलेज है। लेकिन इस गांव के लोग भी आमदनी घटने की शिकायत करते हैं। यहां से लगभग 40 किलोमीटर दूर रूपनगर चीनी मिल के पास के गांव मुंढेर को भी गोद लिया गया है, लेकिन यहां के किसान भी बढ़ती महंगाई, आवारा पशु और मिल की अनदेखी की वजह से परेशान हैं। इसके बाद *डाउन टू अर्थ* ने कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा गोद लिए गांवों की हकीकत जानने के लिए कुछ गांवों का दौरा किया।

## हरियाणा

गुड़गांव जिले की मानेसर तहसील में स्थित सकतपुर और लोकरा गांव किसानों की आमदनी दोगुनी करने के पायलट प्रोजेक्ट में शामिल हैं। शिकोहपुर के कृषि विज्ञान केंद्र ने जुलाई 2019 में इन दोनों गांवों को गोद लिया था। इन दोनों गांवों को गोद लिए करीब सवा साल हो गए हैं।

**“कुछ समय पहले हमारे खेतों से मिट्टी के नमूने लेकर गए थे, लेकिन उसके बाद लौटकर नहीं आए, न ही कोई जवाब दिया। ऐसे में कैसे हमारी आमदनी दोगुनी होगी”**

**—पान बाई, गांव घाना, जिला रायसेन, मध्य प्रदेश**

इस दौरान किसानों की आय बढ़ाने के लिए क्या प्रयास किए गए हैं और ये प्रयास कितने सफल रहे हैं, यह जानने के लिए *डाउन टू अर्थ* ने गांव का दौरा किया। गांव जाकर पता चला कि न सरपंचों को और न ही किसानों को इस बारे में कोई जानकारी है। सकतपुर के सरपंच प्रीतम और लोकरा के सरपंच पंकज से जब हमने ऐसे किसानों के बारे में जानकारी मांगी तो उन्होंने कहा कि उन्हें इसकी जानकारी नहीं है। हालांकि सकतपुर में कुछ युवा जरूर मिले जिन्होंने केंद्र से मशरूम की खेती का प्रशिक्षण लिया है, लेकिन इससे आमदनी बढ़ाने में कोई मदद नहीं मिली है।

लोकरा गांव के किसान अशोक कुमार भी अपनी आय दोगुनी से अधिक बढ़ाने में कामयाब हुए हैं, लेकिन इसका श्रेय वह केवीके को नहीं देते। कृषि विज्ञान केंद्र की मुख्य वैज्ञानिक अनामिका शर्मा ने बताया कि गोद लिए गए गांवों आमदनी दोगुनी करने के लिए अलग से फंडिंग या अन्य किसी प्रकार का सहयोग नहीं मिला है। इसके बावजूद किसानों की आय बढ़ाने के लिए अपने स्तर पर प्रयास किया जा रहा है। उनका दावा है कि केंद्र ने दोनों गांवों के कुल 48 किसानों को अब तक लाभांवित किया है। भले ही आमदनी दोगुनी नहीं हुई है, डेढ़ गुणा तक जरूर बढ़ गई है।

## बिहार

बिहार के भागलपुर जिले में केवीके ने दो गांव का चयन किया है। ये गांव हैं गौराडीह प्रखंड का गंगा करहरिया और कहलगांव का देवीपुर। *डाउन टू अर्थ* ने गंगा करहरिया गांव में जाकर किसानों से बात की। ग्रामीण पंकज कुमार ने बताया कि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि उनके गांव के किसानों की आमदनी दोगुनी करने के लिए गोद लिया गया है। पंकज कुमार तांती वार्ड से पार्षद भी हैं, इसलिए हकीकत जानने के लिए केवीके के अधिकारी को फोन मिलाया तो जवाब मिला कि सरकार प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रही है जिसके लिए जल्द ही उन्हें बुलाया जाएगा। गांव के ही नंदलाल तांती, पूरन साह मंडल और अशोक कुमार मंडल ने भी कहा कि उन्हें सरकार की ओर से कोई मदद नहीं मिल रही है।

## मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश के रायसेन जिले के कृषि विज्ञान केंद्र ने दो गांव बनखेड़ी और घाना को गोद लिया है। *डाउन टू अर्थ* ने दोनों गांव का दौरा किया। बनखेड़ी के किसानों को जानकारी नहीं है कि उनके गांव को गोद लिया गया है। छह एकड़ जमीन पर खेती कर रहे किसान नंदलाल लोधी ने कहा, “पहले की तुलना में उत्पादन तो बढ़ा है, लेकिन लागत डीजल, खाद—बीज और दवाई का खर्चा इतना बढ़ गया है कि लाभ तो वहीं का वहीं है।” सरपंच कल्याण सिंह लोधी ने कहा, “केंद्र (केवीके) वाले बुलाते हैं, नाश्ता कराते हैं और किसान भी सोचते हैं कि आय डबल हो जाए पर यह कैसे होगी?” वहीं दूसरे गांव घाना की महिला किसान पानबाई ने बताया, “कुछ समय खेत से मिट्टी के नमूने लेकर गए थे, लेकिन लौटकर नहीं आए, न कोई जवाब दिया।” मनबाई अहिरवार ने बताया , “एक बार टमाटर और पपीते के चार-चार पौधे देकर गए थे, जो सूख गए। उसके बाद कुछ नहीं मिला। मुझे नहीं लगता कि आय दोगुनी करने के लिए कुछ खास किया जा रहा है।” कृषि विज्ञान केंद्र, रतलाम ने जामथून और नवाबगंज गांव को गोद लिया है। नवाबगंज के किसानों का कहना है कि केवीके के अधिकारी तीन साल से लगातार संपर्क में हैं और डेढ़ से दो माह के बीच उनके खेतों में भी आते हैं। यहां के ग्रामीणों को पता है कि आय बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं और इसमें कुछ तक सफलता भी मिली है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आय बढ़ाने में केवीके के प्रयास अभी जमीन पर दिखाई नहीं दे रहे हैं। गांवों में जिन चुनिंदा किसानों की आय बढ़ी है, वह उनकी दूरदर्शिता और मेहनत का नतीजा है। केवीके के पास फंडिंग की कमी है। ऐसी स्थिति में किसानों की आय बढ़ाना, अंधेरे में तीर मारने जैसा है।

*(हरियाणा से भागीरथ, बिहार से राजीव रंजन, मध्यप्रदेश से राकेश कुमार मालवीय और विक्रम भट्ट के इनपुट के साथ)*

# संगठन के आगे नतमस्तक होती है सरकार

## किसान शहर के बड़े आदमी को सांसद व विधायक बनाएंगे तो वह किसानों के पक्ष में नहीं खड़ा होगा

**चौधरी चरण सिंह**

**हमारे साहित्य** में एक दृष्टांत आया है कि एक शेर का बच्चा गलती से भेड़ और बकरियों के झुंड में पड़ गया। एक शेर आया तो भेड़ और बकरियों की तरह शेर के बच्चे ने भी भागना शुरू किया। शेर इस बच्चे को पकड़ कर एक कुएं के पास ले गया और यह कहा कि देखो, "मैं और तुम एक हैं। तुम भेड़ या बकरी नहीं हो। अपनी ताकत को पहचानो। तुम भी शेर के बच्चे हो। तुम भेड़ और बकरियों की तरह भागना बंद करो।" मेरा कहने का अर्थ यह है कि किसान इस देश का मालिक है लेकिन अपने स्वरूप को भूला हुआ है और अपने आपको गीदड़ और भेड़ समझकर भाग रहा है।

अंग्रेजों के जमाने में कांग्रेस ने एक किसान सभा कायम की थी और जैसे ही देश आजाद हो गया, तो मेरी राय यह थी कि किसान सभा की जरूरत नहीं है, क्योंकि उनको अंग्रेजों से लड़ना था। स्वराज हासिल हो गया तो जिम्मेदारी खत्म हो गई। मेरे कहने पर उत्तर प्रदेश की कांग्रेस कमेटी ने किसान सभा को उस समय बंद कर दिया था। मेरा खयाल यह था कि देश की जनता का बड़ा भारी अंश किसान है। कोई भी राजनीतिक दल उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वह किसी भी राजनीतिक दल में जाए, उस दल के मालिक होंगे और हिन्दुस्तान के मालिक अंत में किसान ही होंगे, इसलिए किसानों को संगठन की जरूरत नहीं है। लेकिन 15 साल के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि मैंने गलती की। यह बात ठीक है कि किसानों की संख्या सबसे ज्यादा है लेकिन वे असंगठित हैं।

गांधी जी कहते थे कि असली भारत गांव में रहता है। शहर में पैदा हुए जो लीडर हैं, जो नेता है, वे कितने ही गंभीर हों, कितने ही नेकनीयत हों, कितने ही ईमानदार हों, उनको आपकी तकलीफों का पता नहीं है। उन्हें आपके मनोविज्ञान का पता नहीं। आपकी कठिनाइयों का पता नहीं। उनको यह नहीं मालूम कि सिंचाई से क्या फायदा होगा। उनको भैंस और गाय में ही फर्क मालूम नहीं।

मैं अगर गांव वालों की बात करता हूं तो इसलिए कि मैं खुद एक किसान के घर पैदा हुआ हूं। मैं छप्पर छवाये मकान में पैदा हुआ, जो छप्पर कच्ची दीवार पर रखा हुआ था। वह खानदान किसानों का था और वे अपने जमीन के मालिक नहीं थे, काश्तकार थे। हमारे घर के सामने कच्चा कुआं था। खेतों के लिए भी और पीने के लिए भी उसी कुएं से पानी लिया जाता था। आदमी के संस्कार का असर उसके

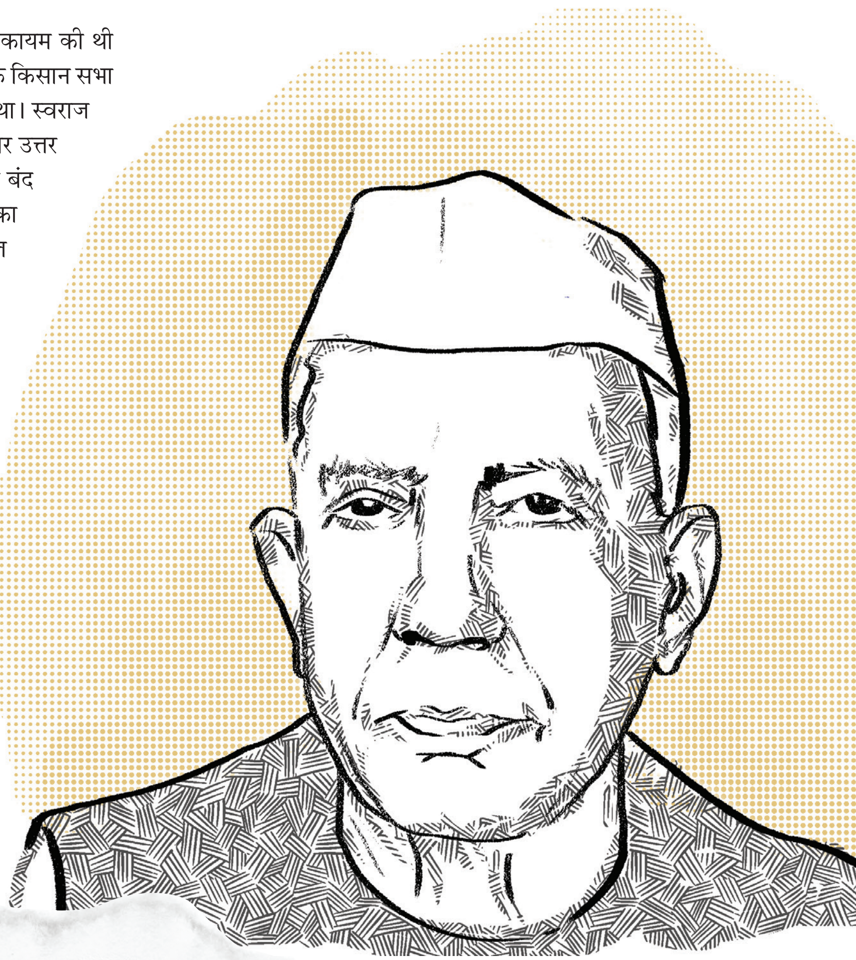

इलस्ट्रेशन : रितिका बोहरा / सीएसई

विचारों पर पड़ता है, शिक्षा का नहीं। मेरा बेटा किसान का बेटा नहीं है। उसे आपकी समस्याओं के बारे में नहीं पता। इंजीनियरिंग पास करके चाहता था कि मैं उसे नौकरी दिलवाऊं। मैंने उससे कहा था, "चार सौ रुपए की नौकरी मिलती है। सरकार में जगह खाली है, उसे ले ले। लेकिन वह कहता था, "मुझसे पीछे रहने वाले लोगों को आज 800 रुपए की नौकरी मिल गई है। उन्हें सेठों की सिफारिश से नौकरी मिली है।" अब उसने मुझसे कहा कि उसे बाहर पढ़ने के लिए भेज दें। यूपी सरकार बाहर तकनीकी शिक्षा हासिल करने वाले लड़कों को दस हजार रुपए का कर्जा देती थी। मैंने वो कर्जा लेकर उसे दिया और वह चला गया, नौकर हो गया। अगर कल को वह प्रधानमंत्री हो जाए तो ठीक वही करेगा, जो जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा ने किया है।

मैं आपकी बात करता हूं। कोई परोपकार की बात नहीं करता। मेरी आत्मा का तकाजा है, मेरे संस्कारों का तकाजा है कि आपकी और गरीबों की बातों को जानूं और ये लीडर आपकी बातों को जानें। किसानों को अपनी ताकत पहचान लेनी चाहिए। हिन्दुस्तान तब तक नहीं उठेगा, जब तक किसानों की हालत अच्छी नहीं होगी।

किसान की आमदनी का जरिया है खेती। खेती की पैदावार जितनी बढ़ेगी, उतने ही दूसरे धंधे बढ़ेंगे और देश मालदार होगा। जिस देश में किसानों की तादाद ज्यादा है वो देश गरीब हैं। दूसरे पेशा करने वाले लोगों की तादाद जब ज्यादा होती है तो वह देश मालदार होता है। इसीलिए अमेरिका सबसे मालदार देश है। 100 में से चार आदमी खेती करते हैं और 96 आदमी दूसरा पेशा करते हैं। हमारे देश में जब अंग्रेज आए तो 100 में से 60 आदमी खेती करते थे और 25 आदमी उद्योग-धंधे में लगे हुए थे। अब 100 में 72 आदमी खेती करते हैं और 9 या 10 आदमी उद्योग-धंधे में लगे हुए हैं। तो जब अंग्रेज आए, हमारा देश मालदार था, अब देश गरीब है।

**अंग्रेजों के वक्त 100 में से 60 लोग खेती करते थे, 25 आदमी उद्योग-धंधे में लगे हुए थे। अब 100 में 72 आदमी खेती करते हैं और 9-10 आदमी उद्योग में लगे हैं। जब अंग्रेज आए, तब देश अधिक मालदार था**

मैं जो बात कह रहा था वह बात बीच में रह गई। मैंने किसान सभा को बर्खास्त करवा दिया था। लेकिन 15 साल के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि किसानों को संगठन की जरूरत है। आखिर क्यों? जितने छोटे-छोटे वर्ग वाले लोग हैं, वे बहुत आगे बढ़ रहे हैं और गांव के लोग, आमतौर पर किसान, सबसे पीछे रह गए। जब अंग्रेजों के जमाने में हम उनकी खिलाफत करते थे, व्याख्यान देते थे, तो एक बात हमारे कहने की यह थी, हमारा यह तर्क था कि शहर में बड़े-बड़े सेठ बढ़ गए, मालदार आदमी बहुत बढ़ गए और गांव के लोग जो हैं वे कमजोर और गरीब हो गए। उन दोनों की आमदनी का फर्क बढ़ गया। हमने सोचा था कि स्वराज होगा तो हम इस अंतर को कम करेंगे लेकिन आपको सुनकर अचरज होगा कि बात उल्टी हो गई। सन 1950-1951 में अगर किसान की आमदनी 100 रुपए थी, तो शहर में रहने वाले गैर किसानों की आमदनी 175 रुपए थी। 1976-77 में क्या हुआ? 26 साल के स्वराज के बाद क्या किसान की आमदनी बढ़ी? जब अंग्रेज गए तो आम किसान की आमदनी 175-350 रुपए थी। तीस साल के स्वराज्य के बाद भी आमदनी 350 रुपए तक क्यों है?

रेलवे के लोग हड़ताल करते हैं, तो सरकार झुकती है। जो लोग जहाजों को लादते हैं या उससे सामान उतारते हैं, वे हड़ताल करते हैं तो सरकार झुकती है। जो लोग बिजली में काम करते हैं, वे हड़ताल करते हैं तो सरकार झुकती है। जो लोग बैंकों में काम कर रहे हैं, वे क्लर्क 1,700 रुपए पाते हैं... और तीन बजे क्लर्क रजिस्टर उठाकर रख देता है। उसे लगता है कि आज का मेरा काम खत्म हो गया। अगर दो घंटे और काम करते हैं तो बाइस रुपए घंटा ओवर टाइम मिलता है। क्लर्क 1,700 तनख्वाह की जगह चार-चार हजार रुपए पा रहे हैं। हमारे पास हवाई जहाजों का मेला है। उसके ड्राइवर को 1,350-1,400 रुपए महीने मिलता है। हवाई जहाज में जो लड़कियां रहती हैं, चाय आदि देने के लिए उन्हें 700 रुपए तनख्वाह मिलती है और 1,500 रुपए महंगाई भत्ता अलग से पाती हैं। वे कुल 2,200 रुपए पाती हैं। फिर भी हड़ताल होती है और सरकार झुकती चली जाती है।

किसान हड़ताल नहीं कर सकते। और न मैं चाहता हूं कि वे हड़ताल करें। लेकिन किसानों को अपना संगठन बनाना चाहिए। दुनिया में आज कोई किसी को संगठन के बिना पूछता नहीं है, चाहे उनकी मांग कितनी ही वाजिब क्यों न हो।

किसानों को कर्जा देने के लिए एक अलग बैंक होना चाहिए। अपने जितने बैंक हैं, सरकार की तरफ से वे दूसरे लोगों को कर्जा देते हैं। कायदे-कानून के मुताबिक, उनको किसानों को भी कर्जा देना चाहिए। लेकिन किसान चक्कर काटते रहते हैं। मान लो अन्य लोगों को बैंकों से 10 करोड़ रुपए नौ फीसदी ब्याज पर कर्जा मिलता है, तो एक करोड़ रुपए किसानों को भी कर्जा मिलना चाहिए। खेती करने वालों की तादाद 72 फीसदी है। इतने लोग जिस पेशे में लगे हुए हैं तो उस पेशे के विकास के लिए एक करोड़ रुपए और बाकी 28 फीसदी लोगों के लिए नौ करोड़ रुपए। इसमें किसी सरकार का कसूर नहीं है। आप शहर के बड़े आदमी को लीडर बना देंगे तो आपका सांसद और विधायक वहां जाकर कुछ नहीं करेगा। वह शहर के लोगों के पक्ष में खड़ा होगा।

समस्याएं अनेक हैं। उन समस्याओं का हल एकदम नहीं कर सकते। गांवों में सड़कों, स्कूलों, अस्पतालों, बिजली आदि की कमी है। भ्रष्टाचार तब तक नहीं मिटेगा जब तक गांव के रहने वाले लड़के दिल्ली और कर्नाटक में जाकर राजसत्ता छीन नहीं लेंगे। बिना इसके चलने वाला नहीं। मैं कहना चाहता हूं कि उठो और जागो। अपनी ताकत को पहचानो। तुम्हें बहुत दिन हो गए सोते हुए। यह हिन्दुस्तान तुम्हारा है। केवल शहरों और पूंजीपतियों का नहीं।

*(पूर्व प्रधानमंत्री चरण सिंह द्वारा 4 नवंबर 1979 को हुबली में किसान सम्मेलन में दिए गए भाषण के संपादित अंश)*

# खेती-किसानी से गायब हो रहीं हैं महिलाएं

कृषि क्षेत्र में महिला किसान तेजी से खेतिहर मजदूर में तब्दील हो रही हैं

अनिल अश्विनी शर्मा

**इस वक्त** पूरे देश सहित दुनिया की मीडिया में पिछले 50 से भी ज्यादा दिनों से चल रहे किसान आंदोलन की चर्चा है। सुप्रीम कोर्ट ने भी इसमें चार सदस्यीय कमेटी बनाई है। हालांकि इनमें से एक सदस्य ने अपना नाम वापस ले लिया है। मामले की सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने किसानों के वकील एपी सिंह से कहा कि आंदोलन स्थल से महिला, बच्चे और बूढ़ों को घर भेज देना चाहिए। कोर्ट की इस बात से आंदोलन में शामिल होने आईं महिला किसान काफी नाराज हैं। उनका कहना है कि खेतों में महिलाएं, पुरुष किसानों से ज्यादा मेहनत करती हैं तो हम आंदोलन छोड़कर घर क्यों चले जाएं? महिला किसानों का कहना है कि बीज लगाने, निराई-गुड़ाई करने से लेकर खेती का 73 ( *आक्सफेम इंडिया* ने यह बात अपने एक सर्वे में कही है) फीसदी काम महिला किसान करती हैं। इसीलिए हम आंदोलन स्थल से कहीं भी डिगने वाले नहीं हैं।

*डाउन-टू-अर्थ* ने आंदोलन के बहाने भारत में महिला किसानों की स्थिति की पड़ताल की है। आंकड़ों के आधार पर की गई इस पड़ताल में महिला किसानों को लेकर कई चौंकाने वाली जानकारियां सामने आई हैं। मसलन देश में महिला किसानों की संख्या में लगातार गिरावट दर्ज हो रही है, वहीं खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या बढ़ रही है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 9.59 करोड़ किसान हैं। इनमें 7.30 करोड़ पुरुष और 2.28 करोड़ महिलाएं हैं। वहीं, देश में कुल 8.61 करोड़ ऐसे मजदूर हैं जो खेतों में मजदूरी करते हैं। इनमें 5.52 करोड़ पुरुष और 3.09 करोड़ महिलाएं हैं। इसके अलावा बागवानी, पशुपालन, मछली पालन जैसे व्यवसाय से कुल 80.95 लाख लोग जुड़े हैं। इनमें 25 लाख महिलाएं शामिल हैं।

**खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या में यदि आयु वर्ग को देखें तो हैरान करने वाली बात सामने आती है कि खेतों में 5-9 साल की उम्र की बच्चियों की संख्या अधिक हैं**

खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या को देखते हैं तो ये हैरान करने वाली बात है कि हमारे खेतों में 5-9 साल की उम्र की बच्चियां भी मजदूरी करती हैं। जनगणना 2011 के अनुसार देश में 1,20,701 बच्चियां हैं जो खेतिहर मजदूर हैं। संख्या के लिहाज से देखें तो सबसे ज्यादा 40-49 उम्र वर्ग की महिलाएं खेतों में मजदूरी करती हैं। इनकी संख्या 62.64 लाख है। इसके बाद 35-39 साल की 40.89 लाख, 25-29 उम्र की 39.54 लाख, 30-34 उम्र वर्ग की 38.67 लाख, 50-59 के बीच की उम्र वाली 37.18 लाख महिला खेतिहर मजदूर हैं। इसके बाद 20-24 साल के बीच 34.62 लाख, 60-69 साल की 22.31, 15-19 साल की 20.31, 70-79 उम्र की 4.95 लाख, 10-14 साल की 4.55 और 80 साल से ज्यादा उम्र की 1.21 लाख महिलाएं खेतों में मजदूर हैं।

2001 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार देश में 10.36 करोड़ किसान थे। इनमें से 7.82 करोड़ पुरुष और 2.53 करोड़ महिला किसान थीं। वहीं, खेतिहर मजदूरों की संख्या 6.34 करोड़ थी। इनमें से 4.11 करोड़ पुरुष और 2.23 करोड़ महिलाएं शामिल थीं। आंकड़ों की तुलना करने पर सामने आता है कि 2001 से 2011 के बीच कुल खेतिहर मजदूरों की संख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है। दोनों जनगणनाओं के बीच देश में 2,26,71,592 खेतिहर मजदूर बढ़े हैं।

महिला खेतिहर मजदूरों की बात करें तो 2001 में ये 2.23 करोड़ थीं जो 2011 में बढ़कर 3.09 करोड़ हो गईं। दूसरे शब्दों में कहें तो 2001 से 2011 के बीच देश में खेतिहर महिला मजदूरों की संख्या में 85.34 लाख का इजाफा हुआ है।

जनगणना 2011 के ही आंकड़े बताते हैं कि 2001 से 2011 के बीच महिला किसानों की संख्या घटी है और महिला खेतिहर मजदूरों की संख्या बढ़ी है। 2001 में जहां महिला किसानों की संख्या 2.53 करोड़ थी, वहीं 2011 में घटकर 2.28 करोड़ रह गई। यानी करीब 25 लाख महिला किसानों ने खेती का काम छोड़ दिया है। इससे साफ है कि या तो ये महिलाएं खेतों में मजदूर बन गईं या कोई दूसरे तरह का काम करने लग गईं। इसके अलावा देश में कुल किसानों की संख्या भी कम हो रही है। 2001 से 2011 के बीच भारत में 76.83 लाख किसान कम हुए हैं। इन 10 सालों में 51.91 लाख पुरुष किसान कम हुए हैं और 1.41 करोड़ पुरुष खेतिहर मजदूर बढ़े हैं। विशेषज्ञों के अनुसार किसानों की कम होती संख्या और बढ़ते खेतिहर मजदूरों की संख्या में काफी निकट संबंध है। कृषि भूमि कम होती जा रही है, लेकिन 2001 में जो व्यक्ति थोड़ी भी जमीन का मालिक था, वो 2011 में भूमिहीन हो गया और खेतों में मजदूरी करने लगा। भारत में कुल 1,457 लाख कृषि भूमि स्वामित्व हैं। एग्रीकल्चर सेंसस 2015-16 के अनुसार 13.96 प्रतिशत महिलाओं का ही कृषि भूमि पर स्वामित्व है। ये 2010-11 में 12.79 प्रतिशत था। कुल कृषि भूमि में से 11. 72 फीसदी महिला किसान इसे ऑपरेट करती हैं।

भारत में छोटी, मझौली और बड़ी महिला किसानों पर औसतन एक हेक्टेयर से भी कम भूमि है। या यूं कहें कि महिलाओं का एक हेक्टेयर से भी कम कृषि भूमि पर स्वामित्व अधिकार ( ऑपरेशनल होल्डिंग ) है। महिला और पुरुषों को मिलाकर यह 1.08 हेक्टेयर है। वर्गीकरण करने पर और भी चौंकाने वाले आंकड़े सामने आते हैं। देश में 1.58 करोड़ हेक्टेयर कृषि भूमि पर ही महिला कृषकों का स्वामित्व

है। यह हाल तब है जब ग्रामीण भारत की 73 फीसदी से ज्यादा श्रमिक खेती का काम करती हैं। सिर्फ 5.43 लाख महिला किसानों पर 7.5 हेक्टेयर से 10 हेक्टेयर तक कृषि भूमि का स्वामित्व है। वहीं, सिर्फ 66 हजार ऐसी महिला कृषक हैं, जिनके नाम 20 हेक्टेयर से अधिक कृषि भूमि है। अनुसूचित जाति की महिला किसानों के पास औसतन 0.68 हेक्टेयर कृषि भूमि पर ही स्वामित्व है। वहीं, अनुसूचित जनजाति की महिला किसानों की स्थिति थोड़ी ठीक है। 1.23 हेक्टेयर औसतन भूमि एसटी महिलाओं के पास है। कृषि जनगणना 2015-16 के अनुसार 30.99 लाख महिला किसान देश में हैं, जिनके नाम एक से दो हेक्टेयर कृषि भूमि है। हिंदू उत्तराधिकार बिल 1956 के अनुसार यदि पुरुष की मृत्यु के बाद उसकी जमीन विधवा, बच्चे और मृतक की मां में बराबर बांटी जाएगी। यही कानून सिख, बौद्ध और जैन धर्मों के लिए है। वहीं, मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार विधवा महिला को एक चौथाई का हिस्सेदार संपत्ति में माना गया है, लेकिन सामाजिक रीति-रिवाजों के चलते ऐसा बेहद कम हो रहा है कि कानून के अनुसार महिलाओं को संपत्ति में हक मिल रहा हो। ऊपर के आंकड़ों से साफ है कि भारत में कानून भले महिलाओं को जमीन-जायदाद में से हिस्सा देता हो, लेकिन भारतीय समाज और उसके अपने कानून उन्हें उनके इस हक से वंचित रखते हैं। *ऑक्सफेम इंडिया* के एक सर्वे (2018, सन ऑफ द सॉइल) के अनुसार खेती-किसानी से होने वाली आय पर सिर्फ 8 फीसदी महिलाओं का ही अधिकार होता है। मतलब कि खेती से होने वाली आय पर 92 फीसदी पुरुषों का कब्जा है। जबकि 73 फीसदी महिलाएं खेती-किसानी से जुड़ी हुई हैं।

**खेती-किसानी से होने वाली आय पर सिर्फ 8 प्रतिशत महिलाओं का ही नियंत्रण होता है और मात्र 13 प्रतिशत महिलाएं ही जमीन का स्वामित्व का हक रखती हैं**

महिलाओं को सरकारी रिकॉर्ड्स में किसान बताया ही नहीं जाता। सिर्फ 13 प्रतिशत महिलाएं कृषि भूमि पर स्वामित्व रखती हैं। इसीलिए 87 फीसदी महिलाएं सरकार की ओर से खेती पर मिलने वाले लोन, सब्सिडी का लाभ नहीं ले पाती हैं। इस संकट को ध्यान में रखते हुए साल 2011 में मनोनीत राज्यसभा सदस्य एमएस स्वामीनाथन (2007-13) संसद में वुमन फार्मर एनटाइटलमेंट बिल-2011 लेकर आए। 11 मई, 2012 को यह बिल राज्यसभा में पेश हुआ, लेकिन यह अप्रैल, 2013 में रद्द हो गया। 9 चैप्टर के इस बिल में महिला किसानों के हक, अधिकार और सरकारों की जिम्मेदारी तय करने की बातें थीं। इस बिल में महिला किसानों की परिभाषा जैसी बातें भी थीं। बिल के सेक्शन 2एफ के अनुसार वे महिलाएं जो गांवों में रहती हैं और मुख्य रूप से खेती के काम करती हैं, हालांकि कभी-कभी ये गैर-कृषि काम भी करती हैं, वे सभी महिलाएं किसान हैं। वहीं बिल में महिला किसानों को सर्टिफिकेट देने और इन सर्टिफिकेट्स को सबूत के तौर पर मान्यता देने की बात थी। इसके अनुसार ग्राम सभा की मंजूरी के बाद ग्राम पंचायत महिला किसानों को ऐसे सर्टिफिकेट उपलब्ध कराए जिनसे यह साबित हो सके कि महिला खेती से जुड़ी हुई हैं। महिला किसान एनटाइटलमेंट बिल लाने के लिए नवंबर, 2018 में करीब 10 हजार महिला किसानों ने "दिल्ली चलो" का आह्वान किया था, लेकिन सरकार ने किसानों की मांगों पर खास ध्यान नहीं दिया। "किसान मुक्ति मार्च" का आयोजन ऑल इंडिया किसान संघर्ष समन्वय समिति ने किया था। इसमें 200 से अधिक किसान संगठन शामिल हुए थे। महिला किसानों के इस मार्च की मुख्य मांगें लगभग वही थीं, जिनका स्वामीनाथन ने अपने बिल में जिक्र किया था। 2018 में ही खेती में लिंग आधारित भेदभाव को खत्म करने के लिए "ग्राम सभा से विधान सभा" के नाम से एक मार्च भी निकाला गया। यह मार्च 2006 में गोरखपुर पर्यावरण क्रिया समूह (जीईएजी) के शुरू किए अभियान अरो का ही हिस्सा था। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य खेती में वास्तविक रूप से योगदान करने वालों का सशक्तिकरण करना था। एक अनुमान के मुताबिक किसानी में शामिल 52-75 फीसदी महिलाएं अपनढ़ या बेहद कम पढ़ी-लिखी हैं। उनमें जागरुकता की कमी है। इसीलिए अधिकतर महिलाएं अपने खेतों में बिना किसी मेहनताने के ही काम करती हैं। कृषि में पुरुष किसानों की मजदूरी महिला मजदूरों के मुकाबले में एक चौथाई तक ज्यादा होती है। पूरी दुनिया में कृषि क्षेत्र में 50 प्रतिशत योगदान ग्रामीण महिलाओं का है। खेती में महिलाओं की भूमिका को देखते हुए भारत में हर साल 13 अक्टूबर को महिला-किसान दिवस मनाया जाता है। एफएओ के आंकड़े कहते हैं कि देश के हिमालयी क्षेत्र में एक ग्रामीण महिला हर साल 3,485 घंटे प्रति हेक्टेयर काम करती हैं। इसके मुकाबले पुरुष केवल 1,212 घंटे ही काम करते हैं। नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गेनाइजेशम (एनएसएसओ) के आंकड़े कहते हैं कि 23 राज्यों में कृषि, वानिकी और मछली पालन में ग्रामीण महिलाओं का 50 प्रतिशत श्रम लगा होता है। बंगाल, तमिलनाडु, पंजाब और केरल जैसे राज्यों में ये 50 फीसदी है तो बिहार, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में महिलाओं का श्रम 70 फीसदी तक है। पूर्वोत्तर के राज्यों में यह 10 प्रतिशत है।खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार, भारतीय कृषि में महिलाओं का योगदान लगभग 32 प्रतिशत है। 48 प्रतिशत महिलाएं कृषि संबंधी रोजगार में शामिल हैं जबकि 7.5 करोड़ महिलाएं दूध उत्पादन और पशुधन प्रबंधन में उल्लेखनीय भूमिका निभा रही हैं।

# खेती पर कारपोरेट की नजर

भारत का किराना बाजार दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा बाजार है, अब इस पर कब्जे की होड़ है

राजू सजवान

# कारपोरेट का दखल

सितंबर 2020 में संसद द्वारा पास किए कृषि कानूनों को लेकर किसान गुस्से में हैं। किसान संगठनों का कहना है कि ये कानून कारपोरेट के फायदे के लिए हैं। इन कानूनों के लागू होने के बाद कारपोरेट्स न केवल आसानी से कृषि उपज खरीद सकेंगे, बल्कि जरूरत के मुताबिक ठेके पर खेती करवा सकेंगे और उपज खरीद कर अपने पास जमा कर सकेंगे। किसान संगठनों की यह आशंका काफी हद तक इसलिए सही लगती है, क्योंकि पिछले कुछ सालों के दौरान कारपोरेट समूहों ने खाद्य (फूड) एवं किराना (ग्रोसरी) बाजार में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाई है, बल्कि कई अध्ययन बताते हैं कि आने वाले सालों में इन दोनों क्षेत्रों में संगठित बाजार की हिस्सेदारी बढ़ेगी। साथ ही, इसमें ऑनलाइन मार्केट का दखल भी बढ़ेगा।

यूनाइटेड स्टेट डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर (यूएसएफडी) के फॉरेन एग्रीकल्चरल सर्विस ने 17 जुलाई 2019 को भारत के रिटेल फूड सेक्टर पर एक रिपोर्ट "रिटेल सेक्टर एक्सपेंशन क्रिएट न्यू अपॉर्चुनिटीज फॉर हाई वेल्यू प्रोडक्ट्स " जारी की। यह रिपोर्ट बताती है कि भारत के विकसित होते कृषि बाजार से खाद्य प्रसंस्करण, आयातक, थोक विक्रेता, खुदरा, फूड सर्विस ऑपरेटर जुड़े हुए हैं। भारत की फूड एवं ग्रोसरी रिटेल मार्केट दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी मार्केट है, जो सालाना 500 बिलियन अमेरिकी डॉलर (लगभग 36.50 लाख करोड़ रुपए) की बिक्री करती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि इस रिटेल बाजार पर अभी पारंपरिक स्टोर जैसे गली-नुक्कड़ की दुकानों या किराना स्टोर का कब्जा है। इनकी हिस्सेदारी 98 फीसदी बताई गई है, जबकि सुपर मार्केट जैसे नए व आधुनिक बाजार की हिस्सेदारी 2 फीसदी है। 2019 की इस रिपोर्ट में कहा गया था कि 2020 तक आधुनिक बाजार की हिस्सेदारी दोगुनी यानी चार फीसदी हो जाएगी। वहीं, कुछ निजी स्वतंत्र अनुमानों का हवाला देते हुए कहा गया कि 2023 तक भारत की खाद्य खुदरा बिक्री में 60 फीसदी वृद्धि होगी और यह बाजार 800 बिलियन डॉलर तक पहुंच जाएगा।

दरअसल, यूएस एफडीए द्वारा अक्सर दूसरे देशों के बारे में इस तरह की रिपोर्ट जारी की जाती है, ताकि अमेरिकी कारोबारी इन रिपोर्ट्स के आधार पर अपने लिए दूसरे देशों में संभावनाएं तलाश सकें। इस रिपोर्ट में भी अमेरिकी कारोबारियों को भारत में खाद्य एवं किराना क्षेत्र में अपने लिए बाजार तलाशने को कहा गया है। अमेरिका के कृषि विभाग की इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत का सबसे बड़ा फूड रिटेलर रिलायंस समूह डिजिटल थोक मार्केट के माध्यम से पारंपरिक किराना बाजार में अपना दखल बढ़ाना चाहता है।

पिछले कुछ सालों के दौरान भारत में ई-कॉमर्स का चलन बढ़ा है। हालांकि शुरू में किराना बाजार में इसका चलन नहीं देखा गया, लेकिन अब इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। खासकर कोविड-19 वैश्विक महामारी के दौरान ऑनलाइन बाजार में खासी वृद्धि हुई है। मार्केट रिसर्च एवं एडवाइजरी फर्म रेडसीर ने सितंबर 2020 में "ऑनलाइन ग्रोसरी : वाट ब्रांड नीड टु नो" रिपोर्ट जारी की, जिसमें कहा गया कि लॉकडाउन और कोविड-19 की वजह से ई-ग्रोसरी के जरिए खरीदारी में 73 फीसदी की वृद्धि हुई। ताजा सब्जी व फल की खरीद में 144 फीसदी की वृद्धि हुई, जबकि एफएमसीजी (जैसे पैकेटबंद आटा, दालें, मैगी, दूध, तेल, बिस्कुट आदि ) उत्पादों की बिक्री में 150 फीसदी की वृद्धि हुई।

> **भारत के सबसे बड़े फूड रिटेलर रिलायंस समूह डिजिटल थोक मार्केट के माध्यम से पारंपरिक किराना बाजार में अपना दखल बढ़ाना चाहता है**

ऑनलाइन बिक्री बढ़ने से बाजार के कई बड़े खिलाड़ियों और कारपोरेट का ध्यान इस ओर गया। इसमें जियो प्लेटफॉर्म प्रमुख है। इस रिपोर्ट के मुताबिक, 2019 में भारत में ऑनलाइन ग्रोसरी का बाजार 1.98 बिलियन डॉलर का था, जो 2024 तक बढ़कर 18.2 बिलियन डॉलर का हो सकता है। रेडसीर की रिपोर्ट के मुताबिक, इसका बड़ा फायदा रिलायंस को मिलेगा, जिसने हाल ही में फेसबुक से साझेदारी की है और भारत में बिग बाजार, ईजी डे क्लब व एफबीबी रिटेल स्टोर चेन चला रही कंपनी फ्यूचर रिटेल का अधिग्रहण किया है। इसके अलावा फ्लिपकार्ट, अमेजन, स्विगी, जोमेटो, डुंजो आदि बड़ी कंपनियों को भी ऑनलाइन खरीद का फायदा मिलने वाला है।

मार्च 2018 में भी अमेरिका के कृषि विभाग ने खाद्य प्रसंस्करण उद्योग (फूड प्रोसेसिंग इंडस्ट्री) पर एक रिपोर्ट जारी की थी, जो बताती है कि भारत के फूड प्रोसेसिंग सेक्टर में भी संगठित क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ेगी। इस रिपोर्ट में एसोचेम और ग्रांट थ्रॉटन स्टडी के हवाले से बताया गया कि भारत में फूड एवं बेवरेज विनिर्माण के क्षेत्र में 2024 तक इस क्षेत्र में 33 बिलियन डॉलर का निवेश होगा। भारत में प्रमुख फूड प्रोसेसिंग कंपनियों में नेस्ले इंडिया लिमिटेड, ब्रिटेनिया इंडस्ट्रीज लिमिटेड, अमूल इंडिया, पारले एग्रो प्राइवेट लिमिटेड, हल्दीराम फूड इंटरनेशनल लिमिटेड और आईटीसी लिमिटेड शामिल हैं। भारत में पैकेट बंद खाने के सामान का बिजनेस किस तेजी से बढ़ रहा है, अमेरिकी

कृषि विभाग की इस रिपोर्ट में साफ देखा गया है। रिपोर्ट बताती है कि 2013 में जहां चावल, पास्ता और नूड्ल्स की 19.25 लाख टन की बिक्री हुई, जो 2017 में बढ़कर 31.49 लाख टन हो गई यानी 64 फीसदी वृद्धि हुई। इसी तरह ब्रेकफास्ट आहार में 89 फीसदी, तेल और वसा में 93 फीसदी, प्रोसेस्ड मीट, सी फूड में 77 फीसदी, रेडी मील्स में 74 फीसदी की वृद्धि देखी गई। ये रिपोर्ट्स बताती हैं कि भारत में कृषि उपजों से जुड़े उद्योगों में संगठित और ऑनलाइन कारोबार की संभावनाएं लगातार बढ़ रही हैं और इन संभावनाओं को और अधिक तेजी प्रदान करने में कृषि कानून मददगार साबित होने वाले हैं।

## दो समूहों का बढ़ता वर्चस्व

किसानों की चिंता इस बात को लेकर है कि कृषि कानूनों के लागू होने के बाद कारपोरेट को पूरी छूट मिल जाएगी, जिसका खामियाजा आने वाले सालों में उन्हें भुगतना पड़ेगा। किसानों के निशाने पर अभी दो कॉरपोरेट समूह अडानी और रिलायंस हैं। बेशक ये दोनों समूह अलग-अलग बयानों में यह बात साफ कर चुके हैं कि उन्हें कृषि कानूनों से कोई फायदा नहीं होने वाला, लेकिन पिछले कुछ सालों में इन दोनों समूह ने जिस तरह से फूड और रिटेल क्षेत्र को लेकर अपनी तैयारियां की हैं, उससे यह स्पष्ट होता है कि आने वाले सालों में ये दो कारपोरेट समूह फूड और ग्रोसरी बाजार के प्रमुख खिलाड़ी होंगे।

भारत में पैकेटबंद खाद्य तेलों का कारोबार बहुत तेजी से बढ़ा है और इस बिजनेस में अडानी विल्मर लिमिटेड की हिस्सेदारी लगभग 20 फीसदी है। इस कंपनी में भारत के अडानी समूह और सिंगापुर की विल्मर इंटरनेशनल लिमिटेड की 50:50 की हिस्सेदारी है। इस कंपनी ने खाद्य तेल से अपनी शुरुआत की और फॉर्च्यून सोयाबीन, फॉर्च्यून सनफ्लावर, फॉर्च्यून कॉटनसीड तेल बेच रही है। इसके अलावा अडानी विल्मर ने बेसन, बासमती चावल, गेहूं का आटा और सीधे पकने के लिए तैयार (रेडी-टू-कुक) सुपर फूड खिचड़ी के अलावा दालें, शक्कर, सोया चंक्स का कारोबार शुरू किया। इसके अलावा अडानी समूह हिमाचल में किसानों से सेब खरीद कर बेचने का भी कारोबार करता है।

वहीं, रिलायंस इंडस्ट्रीज भी लंबे समय से कृषि उत्पादों को बेचने का काम करती है। रिलायंस रिटेल के नाम से कंपनी 2006 से काम कर रही है। रिलायंस फ्रेश के नाम से कंपनी के 797 से अधिक स्टोर हैं। कंपनी की वेबसाइट के मुताबिक, इन स्टोर में रोजाना 200 टन फल और 300 ताजा सब्जियां बेची जाती हैं। रिलायंस रिटेल द्वारा खेतों से सीधे घर तक खाने का सामान पहुंचने वाले 'फार्म-टु-फॉर्क' मॉडल के तहत किसानों और छोटे वेंडर्स से खरीदारी की जाती है। रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड की 2019-20 की वार्षिक रिपोर्ट के मुताबिक कंपनी जियो मार्ट ऑनलाइन पोर्टल में सामान के साथ-साथ ग्रोसरी का सामान की बिक्री बढ़ाएगी। कंपनी की योजना जियो कृषि ऐप भी लॉन्च करने की है। इस ऐप के जरिए किसानों को रिलायंस रिटेल से जोड़ा जाएगा।

## कारपोरेट्स की योजना

केंद्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के अधीन काम कर रहा इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन उद्योगों की व्यवसायिक गतिविधियों पर नजर रखता है। इसके अनुसार,

- ई-कॉमर्स कंपनी एमेजन ने फूड रिटेल सेक्टर में अगले पांच साल के दौरान 515 मिलियन डॉलर निवेश की घोषणा की है
- पारले एग्रो प्राइवेट लिमिटेड ने अपना सालाना राजस्व 2,800 करोड़ रुपए से बढ़ा कर 5,000 करोड़ रुपए का लक्ष्य रखा है
- अमेरिका की फूड कंपनी कारगिल इंक ने 8 लाख रिटेल आउटलेट तक अपनी पहुंच बनाने और अपने तेल ब्रांड सनफ्लावर को देश के तीन प्रमुख ब्रांडों में शामिल करने का लक्ष्य रखा है।
- नेस्ले इंडिया ने 700 करोड़ रुपए की लागत से गुजरात में अपनी फैक्ट्री लगाने की घोषणा की है
- नवंबर 2019 में हल्दीराम ने अमेजन के साथ करार किया है
- कोका कोला ने हाल ही में फ्रूट जूस लॉन्च किया है
- नवंबर 2020 में भारत की सबसे बड़ी एफएमसीजी कंपनी हिंदुस्तान यूनिलीवर ने नेचर प्रोटेक्ट नाम से एक प्रोडक्ट लॉन्च किया है
- सितंबर 2020 में अमेरिका की प्राइवेट इक्विटी फर्म सिल्वर लेक ने रिलायंस रिटेल में 7,500 करोड़ रुपए के निवेश की घोषणा की है। इससे पहले सिल्वर लेक ने लगभग 12 हजार करोड़ डॉलर का निवेश जियो प्लेटफॉर्म में किया था।

## किसे फायदा, किसे नुकसान?

किसानों की बड़ी चिंता कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग (अनुबंध खेती) को लेकर है। इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेंट (आईआईएम) अहमदाबाद के सेंटर फॉर मैनेजमेंट इन एग्रीकल्चर के चेयरमैन एवं प्रोफेसर सुखपाल सिंह कहते हैं कि भारत में कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग पिछले 30 वर्षों से हो रही है। पंजाब और हरियाणा के कई किसानों को इसका फायदा भी हुआ। इससे सभी किसानों को फायदा होगा, ऐसा पुख्ता तौर पर नहीं कहा जा सकता है।

कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग की पहली जरूरत होती है बड़ा भू-भाग, कम से कम 5 एकड़ और वह भी पूरी तरीके से सिंचित, जो सभी किसानों के पास नहीं होता। दूसरी बात, यह कि किसान और कॉन्ट्रैक्टर के बीच लिखित समझौता होता है। दुःखद पहलू यह है कि सभी किसान पढ़े-लिखे नहीं हैं। इसलिए किसान गुमराह हो सकते हैं। लेकिन एक बात बहुत साफ है कि कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग का लाभ छोटे किसानों को नहीं होगा। अलाभकारी खेती के कारण वे एक न एक दिन अपनी जमीन बेच देंगे। यही किसान की सबसे बड़ी चिंता है।

# किसान को सब्सिडी नहीं, उचित कीमत चाहिए

जब तक किसानों को उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर एमएसपी मिलेगा, तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा

महेंद्र सिंह टिकैत

**1966 में** जब हरित क्रांति का दौर शुरू हुआ था, तब एक ट्रैक्टर की कीमत 11 हजार रुपए थी और डीजल 40 पैसे प्रति लीटर मिलता था, लेकिन अब (2008 में) ट्रैक्टर का बेसिक मॉडल 2.5 लाख का है और डीजल 34 रुपए लीटर है। उर्वरक, कीटनाशक और बीज की कीमतों में कई गुणा वृद्धि हुई है। 1966 में किसानों को 24 घंटे बिजली मिलती थी, लेकिन अब तीन दिन में चार घंटे बिजली मिलती है। कई इलाकों में वह भी नहीं मिलती। पहले हम एक क्विंटल गेहूं बेचकर 8-9 बोरी सीमेंट खरीद लेते थे, लेकिन अब 100 किलो गेहूं बेचकर 5 बोरी सीमेंट भी नहीं खरीद पाते। पहले 250 रुपए में एक तोला सोना मिल जाता थी, जिसकी कीमत अब (2008 में) 13 हजार पहुंच गई है।

दरअसल, गलत कृषि नीतियों के कारण किसानों की दशा बिगड़ी है। जब तक किसानों को उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) मिलेगा, तब तक किसानों की समस्या का समाधान नहीं होगा। 1966 में गेहूं का एमएसपी 76 रुपए

इलस्ट्रेशन : रितिका बोहरा / सीएसई

क्विंटल और गन्ने का 13 रुपए क्विंटल था, लेकिन आज (2008 में) गेहूं का एमएसपी 1,000 रुपए क्विंटल और गन्ने का 81.8 रुपए है। मुझे लगता है कि गेहूं का सही एमएसपी 3,000 रुपए और गन्ने का 250 रुपए प्रति क्विंटल होना चाहिए। मैं यह बात खुलकर नहीं कह सकता, क्योंकि ऐसा करने से हंगामा मच जाएगा कि किसान अपने उत्पादों की काफी अधिक कीमत मांग रहे हैं। किसान को लालची समझा जाने लगेगा। इसलिए मुझे लगता है कि सरकार को 1966 के आधार पर कृषि में लागत और एमएसएपी तय करनी चाहिए। सरकार की राजकोषीय नीति किसान केंद्रित होनी चाहिए। मेरा मानना है कि 500 और 1,000 रुपए के नोट किसानों के काम के नहीं हैं। नोट 1, 2, 5, 10 और 100 रुपए में ही होने चाहिए। बड़े नोटों की वजह से महंगाई बढ़ती है। अगर नोट छोटे रहेंगे तो कीमतें भी नहीं बढ़ेंगी।

## हरित क्रांति ने नुकसान पहुंचाया

हरित क्रांति ने फायदे से ज्यादा नुकसान पहुंचाया है। मैं टेक्नोलॉजी के खिलाफ नहीं हूं। लेकिन हरित क्रांति ने हमसे हमारी पारंपरिक खेती करने का तरीका छीन लिया। हमने बीज को संरक्षित करने का अधिकार खो दिया और हम पूरी तरह से बीज व कीटनाशक कंपनियों की दया पर निर्भर हो गए। सरकार धनी व शक्तिशाली लोगों के साथ है। विदेशी कंपनियों ने हमें डराने के लिए अच्छा जाल बिछाया है। हम एक सीजन से ज्यादा बीज का इस्तेमाल नहीं कर सकते। हमारी अपनी पारंपरिक खाने पीने की आदत बदल गई है। बीज और कीटनाशक कंपनियों का फायदा बढ़ रहा है, लेकिन किसानों का नहीं। किसानों को शिक्षा नहीं मिल रही है, खाद्य सुरक्षा नहीं है और इलाज तक नहीं मिल पा रहा है। किसान बैंक आदि से लोन ले सकते हैं, लेकिन किसी दलाल के बिना संभव नहीं होता। इसलिए वे स्थानीय लोगों से लोन लेते हैं। ये लोग बहुत ज्यादा ब्याज लेते हैं, लेकिन किसानों का अपना स्वाभिमान होता है और वे बहुत ज्यादा जरूरत पड़ने पर ही सहायता मांगते हैं और उस समय ये लोग ही लोन देने के लिए आगे आते हैं।

**हरित क्रांति के बाद हमने बीज को संरक्षित करने का अधिकार खो दिया और हम पूरी तरह से बीज व कीटनाशक कंपनियों की दया पर निर्भर हो गए। सरकार धनी व शक्तिशाली लोगों के साथ है**

किसानों के लिए लोन माफी योजना कोई स्थायी समाधान नहीं है। हमने केंद्रीय कृषि मंत्री (तत्कालीन) शरद पवार और प्रधानमंत्री (तत्कालीन) मनमोहन सिंह को बता दिया है कि सभी किसानों का लोन खत्म किया जाए और इसके बाद इस तरह प्रावधान किए जाएंगे कि किसानों को उनकी फसल का सही दाम मिले। इसके साथ ही कृषि लागत को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

सरकार की कृषि नीतियां किसानों के हित में नहीं हैं। सरकार ने नीतियां बनाते वक्त कभी भी किसान यूनियन से विचार-विमर्श नहीं किया। हालांकि अलग-अलग किसान संगठनों से थोड़ा बहुत सहयोग लिया जाता है। कृषि मंत्री (तत्कालीन) शरद पवार ने कई किसानों को सरकार से बातचीत के लिए बुलाया, लेकिन उनमें से कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एजेंट हैं। हाल ही में कुछ किसान नेताओं ने कीटनाशक कंपनियों के प्रतिनिधि के साथ मंच साझा किया। शरद जोशी ने हाल ही में एग्रो कंपनी के अधिकारियों के साथ से बैठक की है। कृषि मंत्री ने बताया कि कुछ तथाकथित किसान नेताओं का नजरिया हमारे खिलाफ है। इन किसान नेताओं के विचार सच्चे किसानों से एकदम मेल नहीं खाते और वे उसका विरोध करते हैं।

मैं कुछ समय तक यूरोप में रहा हूं। उनकी सरकारें अपने किसानों को बंजर भूमि के लिए सब्सिडी देती है। उन देशों से हम तुलना करें तो हमारे किसानों को कुछ भी सब्सिडी नहीं मिलती। हालांकि हम सब्सिडी नहीं चाहते। किसान को केवल उसकी फसल की सही कीमत दे दो। जिनेवा में हुई डब्ल्यूटीओ की मिनिस्ट्रियल मीटिंग में निर्णय लिया गया कि भारत के बाजार को दूसरे देशों के कृषि उत्पादों के लिए खोल दिया जाएगा। इससे हालात काफी बिगड़ जाएंगे। सोचिए, अगर दूसरे देशों से गन्ना आने लगेगा तो हमारा गन्ना किसान क्या करेगा? अगर हम बाहर से गेहूं मंगाने लगेंगे तो हमारे देश का गेहूं किसान का क्या करेगा, हमारे धान किसानों का क्या होगा?

खेती को बचाने के लिए हमें अपनी पुरानी पद्धति को फिर से अपनाना होगा। कम से कम हम अपनी पारंपरिक खाने की आदत को फिर से बना सकते हैं और बार-बार डॉक्टर के पास जाने से बच सकते हैं। पारंपरिक खेती गाय के गोबर पर आधारित थी, गौमूत्र हमारी कई समस्याओं का समाधान कर सकता है, लेकिन इस तरह के फायदों के लिए जानवर हैं ही कहां हमारे पास? ज्यादातर पशुओं को बूचड़खानों में भेजा जा रहा है। पारंपरिक खेती से उत्पादन कम होगा, लेकिन हमारी लागत में भी काफी कमी आ जाएगी, जिससे किसानों के लिए खेती करना काफी फायदेमंद होगा।

भारत में किसानों को नाममात्र की सुविधाएं मिलती हैं। पश्चिम में किसानों को कई तरह की सुविधाएं दी जाती हैं, उदाहरण के लिए, सिंचाई की फव्वारे प्रणाली। हमारे किसानों के पास इस तरह की टेक्नोलॉजी के लिए पैसे नहीं हैं। यहां तक कि इन दिनों भी देश के कई हिस्सों में सिंचाई के लिए पानी नहीं है। किसानों के लिए बिजली नहीं है। इसलिए बीज खरीदने के लिए जो पैसा खर्च होना चाहिए, उसे सिंचाई पर खर्च किया जा रहा है। हर कोई उत्पादकता की बात करता है, लेकिन बिना पानी के कुछ भी नहीं किया जा सकता।मुझे यह कहने में बिल्कुल संकोच नहीं है कि भारत में कृषि का भविष्य पूरी तरह अंधेरे में है। आज सरकार उद्योग लगाने के लिए उपजाऊ कृषि भूमि का अधिग्रहण कर रही है, वह भी काफी सस्ते दाम पर। मैं उद्योगों के खिलाफ नहीं हूं, लेकिन उपजाऊ जमीन पर उद्योग नहीं लगाए जाने चाहिए। उद्योग केवल बंजर जमीन पर ही लगाए जाने चाहिए।

*(डाउन टू अर्थ ने भारतीय किसान यूनियन के अध्यक्ष महेंद्र सिंह टिकैत से अक्टूबर 2008 में लंबा साक्षात्कार किया था। यह 1-15 अक्टूबर 2008 के अंक में प्रकाशित किया गया था। यह लेख उसी साक्षात्कार पर आधारित)*

# खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा है मिट्टी की घटती गुणवत्ता

2050 तक हमें 60 फीसदी ज्यादा अनाज पैदा करने की जरूरत होगी, जबकि दुनिया की आधी आबादी सूखे जैसे स्थितियों का सामना कर सकती है

जितेंद्र

**मिट्टी आर्थिक** और सामाजिक विकास में केंद्रीय भूमिका निभाती है। यह इंसान, पशु और वानस्पतिक जीवन के बने रहने के लिए अनाज, चारा, रेशा और अक्षय ऊर्जा की आपूर्ति सुनिश्चित करती है। इसलिए, समय-समय पर इसकी देखभाल की जरूरत होती है। खेती लायक जमीन को बढ़ाना मुश्किल है, इसलिए मौजूदा कृषि क्षेत्र पर ही उत्पादन का दबाव है।

ज्यादा अनाज उगाने की हमारी कोशिश में मिट्टी का इस हद तक दुरुपयोग हुआ है कि अब यह हमारी सेहत को प्रभावित करने लगा है। मिट्टी की गुणवत्ता विभिन्न भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाओं का नतीजा है। बहुत ज्यादा खेती, अत्यधिक दोहन जैविक और अजैविक स्रोतों से सीमित क्षतिपूर्ति के कारण मिट्टी की गुणवत्ता क्षीण हुई है। मिट्टी की गुणवत्ता में लगातार गिरावट को अक्सर उपज की स्थिरता या कमी के एक कारण के रूप में देखा जाता है।

2016 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) की ओर से बनाया गया राष्ट्रीय डेटाबेस दिखाता है कि 12.07 करोड़ हेक्टेयर जमीन या भारत की कुल सिंचित और असिंचित भूमि का 36.7 फीसदी जमीन विभिन्न तरह की डिग्रेडेशन (भूमि ह्रास) की शिकार है। इसमें से 8.3 करोड़ हेक्टेयर (68.4 फीसदी) जमीन पानी से होने वाले कटाव की वजह से कमजोर हो रही है, जो मिट्टी को कमजोर करने वाली वजहों में सबसे बड़ी है। पानी का कटाव मिट्टी में जैविक कार्बन के नुकसान, पोषण असंतुलन, मिट्टी के ठोस होने, मिट्टी की जैव-विविधता घटने और भारी तत्वों व कीटनाशकों की मिलावट के रूप में सामने आता है।

> **अत्यधिक दोहन, जैविक और अजैविक स्रोतों से सीमित क्षतिपूर्ति के कारण मिट्टी की गुणवत्ता क्षीण हुई है। इसका नतीजा उपज में गिरावट के रूप में देखा जाता है**

नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी (एनएएएस) के अनुसार, हमारे देश में मिट्टी के नुकसान की सालाना दर 15.35 टन प्रति हेक्टेयर है, जो 53.7 से 84 लाख टन पोषक तत्वों का नुकसान करती है। मिट्टी के नुकसान का तत्काल पड़ने वाला दूसरा असर फसल उत्पादकता में गिरावट है। कटाव वाली मिट्टी से जलाशयों में गाद जमा होती है और जलाशय की क्षमता घटती है, जिसके सालाना 1 से 2 फीसदी होने का आकलन है। यह आगे इसके कमान क्षेत्रों में सिंचाई को प्रभावित करता है।

एनएएएस के मुताबिक, भारत में पानी से होने वाले मृदा अपरदन से वर्षा आधारित प्रमुख फसलों में सालाना 1.34 करोड़ टन कम उत्पादन होता है, जो 205.32 अरब रुपए का नुकसान करता है। कुल जमीन में से 8.8 लाख हेक्टेयर जमीन स्थायी तौर पर पानी में डूबी रहती है और वर्षा आधारित मिट्टी में लगभग 1.25 करोड़ हेक्टेयर हिस्सा खरीफ में होने वाले अस्थायी जलभराव से परती रह जाती है। जलभराव, जो खारापन पैदा करके मिट्टी को नुकसान पहुंचाता है और इसके चलते भारत में सालाना 12 से 60 लाख टन अनाज का नुकसान होता है। इसके अलावा भारत में उपजाऊ मिट्टी का बड़ा हिस्सा गैर-कृषि कार्यों के लिए इस्तेमाल किए जाने से भी प्रभावित हुआ है।

## रसायनों से होने वाला नुकसान

रसायनों से मिट्टी की सेहत को होने वाले नुकसान का पैमाना खारापन (क्षारीयता), अम्लीयता, रसायनों के कारण मिट्टी में आने वाली विषाक्तता और पोषक व जैविक तत्वों में गिरावट और अन्य पोषण संबंधी मुद्दों पर आधारित है। खारेपन से प्रभावित 67.4 लाख हेक्टेयर मिट्टी में 37.9 लाख हेक्टेयर में सोडियम की उच्च मात्रा (9.5 से ज्यादा पीएच मान) और 30 लाख हेक्टेयर खारेपन से प्रभावित मिट्टी शामिल है। पीएच मान के आधार पर देश का एक बड़ा हिस्सा औसत रूप से क्षारीय है।

उत्तर भारत के कुछ हिस्सों जैसे हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर (अविभाजित), पश्चिमी उत्तराखंड और पूर्व भारत जैसे ओडिशा, झारखंड, पूर्वी उत्तर और पश्चिमी तट प्रायद्वीप उच्च या औसत रूप से अम्लीय हैं। लगभग 1.1 करोड़ हेक्टेयर कृषि योग्य जमीन बहुत कम उत्पादकता के साथ अत्यधिक मृदा अम्लीयता (5.5 से कम पीएच मान) से प्रभावित है (अनुपात बहुत ज्यादा क्रमशः 27.7:6.1:1 और 31.4:8.0:1 है)। यहां तक कि खादों की खपत भारत के 42 फीसदी जिलों में ही केंद्रित है। देश के कुल 525 जिलों में से 292 जिलों में ही कुल खादों के 85 फीसदी हिस्से की खपत होती है।

फसलों के बीच खादों के इस्तेमाल में भारी अंतर है। आलू, गन्ना, कपास, गेहूं और धान में क्रमशः 347.2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर, 239.3 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर, 192.6 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर, 176.7 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर और 165.2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर खादों का इस्तेमाल थोड़ा ज्यादा है। यहां तक

कि इन फसलों में नाइट्रोजन वाली खादों का इस्तेमाल सबसे अधिक है। यूरिया का अत्यधिक इस्तेमाल मिट्टी को ज्यादा नुकसान पहुंचा रहा है। 2014-15 में देश में कुल इस्तेमाल होने वाली 48.5 करोड़ टन खाद में यूरिया का हिस्सा 30.6 करोड़ टन था।

कृषि की स्थायी संसदीय समिति की 54वीं रिपोर्ट (2017-18) कहती है कि देश में खादों के इस्तेमाल में असंतुलन के पीछे यूरिया के पक्ष में झुकी हुई सब्सिडी नीति और अन्य खादों की ऊंची कीमतें है। रिपोर्ट यह भी कहती है कि देश में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, सल्फर, जिंक, बोरान, मॉलिब्डेनम, आयरन, मैग्नीज और तांबे के लिए पोषक तत्वों की कमी क्रमशः 89 फीसदी, 80 फीसदी, 50 फीसदी, 41 फीसदी, 49 फीसदी, 33 फीसदी, 13 फीसदी, 12 फीसदी, 5 फीसदी और 3 फीसदी है। रिपोर्ट में कहा गया कि देश में रासायनिक खादों के जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल को तार्किक बनाने के लिए तत्काल कदम उठाने की जरूरत है, ताकि उपजाऊपन बहाल किया जा सके।

## सरकार की पहल

मृदा स्वास्थ्य कार्ड (एसएचसी) योजना का उद्देश्य खादों के इस्तेमाल को नियमित बनाना और कम से कम करना है। इस योजना को 2015 में राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन के तहत 568 करोड़ रुपए के बजट प्रस्ताव के साथ शुरू किया गया था। 2019 के अंत तक सरकार 23.5 करोड़ मृदा स्वास्थ्य कार्ड बांट चुकी है। किसानों के खेतों की मिट्टी की जांच करने के बाद उन्हें कार्ड जारी किया जाता है। इसमें जरूरी पोषक तत्वों की मात्रा के बारे में सुझाव दिए होते हैं और किसानों को पोषक तत्वों की कमी के आधार पर खादों का इस्तेमाल करने के लिए उत्साहित किया जाता है।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद एक सरकारी संस्था है जो उत्पादकता पर शोध करती है। इस संस्था ने फरवरी 2016 में एक आकलन किया और पाया कि एसएचसी के सुझाव के आधार पर खादों का इस्तेमाल करने से देश में खादों के इस्तेमाल में 8-10 फीसदी गिरावट आई है और उपज 5-6 फीसदी बढ़ी है। हालांकि, इन्हें लागू किए जाने के पांच साल बाद जमीन पर एसएचसी का कोई असर दिखाई नहीं देता है और खादों का इस्तेमाल भी लगातार बढ़ रहा है।

सरकारी एजेंसियों की ओर जांच के लिए मिट्टी के नमूने की विधि वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि जांच वाले क्षेत्रों की ग्रिड ठीक नहीं है। वर्षा आधारित क्षेत्र में एक नमूना 10 हेक्टेयर, जबकि सिंचित क्षेत्र में 2.5 हेक्टेयर है। भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल में प्रधान वैज्ञानिक, प्रदीप डे कहते हैं, "यह मिट्टी की प्रकृति का अति-साधारणीकरण है। भारत में भू-जोत बहुत छोटी और बिखरी हुई है।"

मिट्टी की बनावट बहुत से कारकों, जैसे एक साल में उगाई गई फसलों के प्रकार और यहां तक कि किसानों की माली हालत पर निर्भर करती है। अगर किसान के खेत से मिट्टी का नमूना नहीं लिया गया है तो वह एसएचसी की सलाह से सहमत नहीं होते हैं। बड़े पैमाने पर मृदा के ऐसे कमजोर होने के मामले में "यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन टू कॉम्बेट डेजर्टीफिकेशन" की 2019 में नई दिल्ली में हुई बैठक में भारत ने 2030 तक 2.6 करोड़ हेक्टेयर जमीन को दोबारा बहाल करने का वादा किया है। यह कब होगा, यह आने वाला वक्त ही बता पाएगा।

**भारत ने 2030 तक 2.6 करोड़ हेक्टेयर जमीन को दोबारा बहाल करने का वादा किया है। यह लक्ष्य कब तक हासिल होगा, यह आने वाला वक्त ही बता पाएगा**

मिट्टी का उपजाऊपन घटना वैश्विक चिंता है। दुनिया की एक तिहाई मिट्टी पहले ही कमजोर हो चुकी है और आईपीसीसी का आकलन है कि अगर कुछ नहीं किया गया तो 2050 तक यह 90 फीसदी तक पहुंच सकता है। यहां तक कि औसत रूप से कमजोर हो चुकी मिट्टी 30 फीसदी कम अनाज पैदा करती है और स्वस्थ मिट्टी के मुकाबले केवल आधा पानी ही रोक पाती है। 2050 तक हमें 60 फीसदी ज्यादा अनाज पैदा करने की जरूरत होगी, जबकि दुनिया की आधी आबादी सूखे जैसे स्थितियों में हो सकती है। अगर कोई प्रयास नहीं किया गया तो इंसान और वन्यजीवों के बीच सिर्फ टकराव ही बढ़ेगा, जो इस साल आई महामारी का मूल कारण है।

मिट्टी की सेहत में सुधार भविष्य में सुरक्षित खाद्यान्न आपूर्ति, पानी पर दबाव घटाने और जलवायु परिवर्तन को बेअसर करने में मदद करते हुए इस टकराव को टालने में बहुत अधिक सहायक होगा। तीनों व्यापक जैव मंडल- मिट्टी, समुद्र और वायुमंडल में अकेली मिट्टी है, जिसमें हमारे पास मौजूदा उपलब्ध तकनीकी की मदद से सुधार करने के लिए संघर्ष करने का अवसर है। मिट्टी को सुधारने की आवश्यकता मुश्किल से एक मौलिक विचार है। फिर भी वैश्विक पैमाने पर प्रगति दुखद रूप से धीमी रही है।

**ONLINE TRAINING ON**

# UNDERSTANDING ENVIRONMENTAL LAWS FOR BETTER ENVIRONMENTAL MANAGEMENT

**Course date:** February 25- March 6, 2021 **Last date to apply:** February 20, 2021

**Course fees:** INR 2500

India has a comprehensive system of regulations to protect its natural environment and the health of its people. From the enactment of Water Act in 1974, a number of laws and regulations have been put into force in this regard. However, the intended purposes of these laws are far from being fulfilled due to various reasons. One of the issues which sterns out is a holistic understanding of the different laws and how they should be looked into in a concerted manner for better environmental management.

Considering the need to fill the gaps, Centre for Science and Environment, is organizing a ten days online training course on “Understanding Environmental law for improving environmental management”.

### COURSE OBJECTIVE

This ten days online course has been designed to capacitate the people working in the field of environment and the prospective environmentalist with an objective to develop a better understanding and knowledge of the laws and their interrelationship. This course will also be beneficial for students as wellwho aspire to develop their carrier in environment field.

The course will be conducted through technological learning tools such as presentations, videos, discussion with experts and reading material.

### LEARNING FROM THE PROGRAMME

- Better understanding of environmental governance structure of the country, major institution, and their implementation statistics.
- Increased understanding of the obligations of industry and individuals under various environmental laws and regulations and how to meet these obligations.
- Understanding the impacts of violations and noncompliance.
- Role of National Green Tribunal (NGT), environmental courts and public interest litigation (PIL).
- Understanding of international treaties and agreements Government of India subscribes to the impact of non-compliance with such agreements on business.
- Understanding that environmental compliance is not a financial burden but a clear business opportunity.

### WHO CAN APPLY?

- Industry professionals; Environment Consultants; Environment Engineers
- Researchers and academicians
- Students aspiring to work in environment field

PARTICIPANTS WILL BE AWARDED WITH A **“CERTIFICATE OF COMPLETION”** ON SUCCESSFUL COMPLETION OF THE PROGRAMME

### COURSE ORGANIZER


**Ishita Garg**,
**Progarmme Officer, Industrial Air Pollution**
**Email: ishita.garg@cseindia.org**

R.N.I. NO. DELHIN/2018/76697 POSTAL REGN. NO. DL(S)-17/3536/2019-21
ISSN 2582-0168. Licensed to Post at Lodhi Road HO, New Delhi-110003.
Published on 27th of previous month. POSTED ON: 1-2 of the same month. Total pages: 60

THREE-DAY RESIDENTIAL TRAINING PROGRAMME ON

# ENVIRONMENTAL IMPACT ASSESSMENT FOR AIR POLLUTING INDUSTRIES

**COURSE DATE: MARCH 16 -18, 2021**     **LAST DATE TO APPLY: MARCH 10, 2021**

An Environmental Impact Assessment (EIA) is an important tool for assessing impacts of an upcoming/expansion project and providing measures to minimize those impacts. EIA has always been considered as a mere regulatory requirement, however, what has been overlooked is the fact that a good EIA study can actually prove to be beneficial to the developer in terms of cleaner production, no regulatory hassle, resource conservation and good rapport with local community.

Industrial air pollution has become a global issue of discussion especially with so many source apportionment studies highlighting contribution of large and small scale industries to growing air pollution in the cities. EIA needs to be utilized to ensure that air pollution load from industries are addressed significantly during project designing and planning phase and measures are incorporated in Environmental management plans.

Considering this need, CSE is conducting a 3-day residential training programme at its training centre(AAETI) at Alwar. The objective of this programme is to have deep dive understanding of how EIA can be used efficiently to mitigate the air pollution from industries. The programme will majorly focus on air polluting sectors discussing the strategies to prepare good environmental management plans.

## LEARNING FROM THE PROGRAMME

- Consequences of poor EIA report
- Approach, scope and Methodology for EIA preparation
- Baseline data collectionfor air polluting industries
- Evaluation, Interpretation and Validation of data
- Preparation of Environmental Management Plan
- Case studies on good environmental practices in air polluting industries
- Review and Evaluation of EIA Report

## WHO CAN APPLY?

Industry professionals; Environment Consultants; Environment Engineers; Researchers and academicians

## COURSE VENUE

The training programme will be conducted at Anil Agarwal Environment Training Institute (a Centre for Science and Environment initiative), Nimli (near Alwar), Rajasthan. The institute comprises of spacious training halls with laboratory backing and four storied building housing the participants, supported by cafeteria in an exclusive campus.

## COURSE FEES

This is a sponsored programme and **50% seats are reserved for participants from Maharashtra and Rajasthan.** The selection of the participant will be based on relevance of training programmes to their existing roles and responsibility.

**NOTE:** Participants are required to reach Delhi on March 15 latest by 3:00pm, from there they will be transferred to our training campus at Alwar. The return from Alwar to Delhi will be on March 19 by 2:00pm. The cost of travel from Delhi to Alwar and back and stay during the course will be borne by CSE. Participants need to bear the cost of their travel to reach Delhi and back to their hometown.

**COURSE COORDINATOR:**
**Ishita Garg**
Progarmme Officer, Industrial Air Pollution
Email: ishita.garg@cseindia.org
Contact: +91-9899676011